****

MAHARISHI DAYANAND KE PRERAK PRASANG

(Hindi)

****

विषय-सूची

द्वितीय खण्ड

समर्पण

मैं एक समर्पित व तपस्वी विद्वान् साहित्यकार स्व० पं० लक्ष्मण जी आर्योपदेशक की इस पुस्तक को मेरठ क्षेत्र के प्रतिष्ठित एवं प्रख्यात वैदिक विद्वान्, आर्ष तथा अनार्ष साहित्य के मर्मज्ञ, प्रेमल, सरल हृदय, विनम्र तथा कर्मठ गवेषक लेखक श्री डॉ० वेदपाल जी को ऋषि मिशन के प्रति उनकी अमूल्य सेवाओं के लिए सादर समर्पित करता हूँ।

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रथम खण्ड

ऋषि-जीवन

ओ३म्

पहला सर्ग

बुद्धि की विलक्षणता

जो चश्मे ज़ाहिरी में एक मामूली नज़ारा था।
निगाहे ग़ौर से देखा तो दफ़्तर आशकारा था॥[१]

चरम चक्षुओं से देखने पर तो यह एक तुच्छ सा दृश्य था परन्तु जब उस पर गम्भीरता से विचार किया तो यह अत्यन्त शिक्षाप्रद तथा हृदय की गांठें खोलने वाली घटना थी।

ईश्वर ने मनुष्य को उत्तम से उत्तम पदार्थ दिये तथा उन पदार्थों के भोग, उपभोग व प्रयोग के लिए कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान कीं। सूर्य व चन्द्र का क्या उपयोग था यदि आँखें प्रकाश को ग्रहण करने को न होतीं? सुन्दर सृष्टि से क्या शिक्षा मिलती यदि चक्षु उसका सौन्दर्य न दिखाते? इन सबके लिए हम परमात्मा को धन्यवाद देते हैं। परन्तु उस प्रभु का सर्वोत्तम दान तो बुद्धि है जिसके कारण सब इन्द्रियों का व्यवहार ठीक-ठीक होता है। मनुष्य स्वाद में मस्त होकर खाता ही जाता और उसका पेट फट जाता यदि बुद्धि उपदेश न देती कि खाओ उतना ही जिससे भूख मिटे। यदि बुद्धि से कार्य नहीं लिया जावे तो सर्व सामग्री शरीर के लिए दु:खदायक अथवा दु:ख का कारण बन जावे। अत: वे जन धन्य हैं जो सोच विचार का कार्य करते हैं और वे लोग मन्द भागी हैं जो अंधाधुंध कार्य करते हैं। यही वे लोग हैं जो देखते हुए नहीं देखते और सुनते हुए भी नहीं सुनते। इन दो प्रकार के मनुष्यों में कितना अन्तर है? इसके जानने के लिए छोटे से बालक मूलशंकर की दो कथायें सुनाता हूँ।

---

१. यह पद्य लेखक का स्वरचित पद्य है। हमने सन्त प्रवर लक्ष्मण जी की काव्य-शैली की सुरक्षा से इसका हिन्दी पद्यानुवाद करना उचित न जाना। भावार्थ तो दे दिया है। लेखक उर्दू फ़ारसी के अच्छे कवि थे परन्तु पद्य-रचना कभी-कभी ही किया करते थे। 'जिज्ञासु'

१. महादेव के साक्षात् दर्शन हों तो सद्ज्ञान प्राप्त हो–

गुजरात के मौर्वी क्षेत्र काठियावाड के अम्बा शंकर[१] जी शैव मत के अनुयायी थे। आपकी यह दृढ़ इच्छा थी कि मेरा पुत्र मूलशंकर भी इस मत में प्रवीण हो जाये। इसलिए वह उससे शिवलिङ्ग की पूजा करवाते थे। मेलजोल के लिए तथा शैव मत के संस्कार विचार देने के लिए उसे शिव पुराण की कथा में मन्दिर ले जाया करते थे। माघ बदी चतुर्दशी सम्वत् १९२४ वि० को शिवरात्रि का त्योहार था। मूलशंकर को त्रयोदशी के दिन ही कहा गया कि कल तुम को व्रत (उपवास) करना होगा। मोहमयी माता कहती ही रही कि १४ वर्षीय छोटा-सा बालक कैसे व्रत रख सकेगा? मूलशंकर स्वयं भी भूखा रहने को एक विपदा ही समझता था परन्तु पिता ने कुल की रीति नीति मर्यादा का गीत गया। और साथ ही शिव-कथा का महात्म्य सुनाया जो पुत्र को बहुत भाया। उसने पिता के कथन को शिरोधार्य किया।

शिवरात्रि को भक्त लोग शिवालय में एकत्र हुए। रात भर जागरण करना था परन्तु पहले व दूसरे पहर की पूजा ही हुई थी कि रात्रि बारह बजे निद्रा ने भक्तों पर घेरा डाल दिया। सर्वप्रथम अम्बा शंकरजी ही निद्रा की लपेट में आय। भक्तजन भी बारी-बारी लेटते गए। यहाँ तक कि पुजारी भी बाहर आकर लेट गए। सूनी रात में अकेला मूलशंकर ही मूर्ति के आगे बैठा रह गया। नींद आती तो आँखों पर शीतल जल के छींटें मारता है। यदि सो जाता है तो शिवरात्रि के सारे फल से वञ्चित रह जावेगा।

सरल हृदय बालक सच्चे विश्वास को धारण किये हुए निद्रा से युद्धरत था कि एक विचित्र घटना ने उसके आत्मा में जागृति सी उत्पन्न कर दी। देखता क्या है कि एक चूहा दौड़ा

---

१. देवेन्द्र बाबू के अनुसार ऋषि दयानन्द के पिता का नाम कर्शनजी और पितामह का नाम लालजी था। 'जिज्ञासु'

आया और मूर्ति के ऊपर चढ़ गया। चढ़ावे के पदार्थ खाकर ऊपर नीचे दौड़ता फिरा।

क्या यह वही शिव है?— बालक चौकन्ना होता है कि हैं! क्या यह वही महादेव है जिसकी कथा सुनी थी। ओह! शिवजी वह महादेव तो पाशुपतास्त्र से बड़े-बड़े दैत्यों को मारे परन्तु, यह मूर्ति तो चूहे को भी अपने ऊपर से नहीं हटावे। वहीं पिता को जगाया। अपनी शंका कह सुनाई जिस पर पिता को बड़ा क्रोध आया और उसने उसे दबाया कि तेरी बुद्धि बहुत भ्रष्ट है। तू ऐसे प्रश्न करता ही क्यों है?

(बालक):— इस लिये कि कथा वाला महादेव चेतन था वह चूहे को कैसे अपने ऊपर चढ़ने दे? कि वह उसे गन्दा करता फिरे।

पारब्रह्म के गुण इस मूर्ति में नहीं घटते— जिस महादेव को पारब्रह्म कहा उसके गुण इस प्रतिमा में घट नहीं सकते। पिता समझाता है कि वास्तविक महादेव तो कैलास पर है। कलयुग में उसका साक्षात नहीं होता अतः उसकी प्रतिमा पूज कर उसे प्रसन्न किया जाता है परन्तु मूलशंकर[१] की इन बातों से संतुष्टि कहाँ? वह इस विचार में डूबा है कि महादेव का साक्षात् हो तो सच्चाई प्रकट हो।

२. अमर पद की प्राप्ति की औषधि खोजनी चाहिये।

बहिन चल बसी:— मूलशंकर सोलह वर्ष का था। जब वह एक रात्रि पिता आदि के साथ एक समारोह में सम्मिलित हुआ। अकस्मात् आकर सेवक ने यह समाचार दिया कि उसकी चौदह वर्षीय बहिन को विशूचिका हो गया है। सब दौड़ हुये आये। वैद्य बुलवाया। उपचार करवाया परन्तु, कुछ लाभ न हुआ। रोगी चार घंटे में चल बसा। मूलशंकर बिछौने के पास दीवार के सहारे

१. सब जीवनी लेखक ऋषि का पूर्व नाम मूलशंकर ही मानते हैं परन्तु उन्हें दयालजी व दयाराम भी कहा जाता है। गुजरात में दो-दो नामों की प्रथा है। पिता द्वारा दिया गया नाम मूलशंकर ही था। 'जिज्ञासु'

खड़ा था। उसने प्रथम बार ही मृत्यु का दृश्य देखा। हृदय को बहुत चोट लगी। उसने सोचा कि सबको इसी प्रकार से मरना है। मैं भी मर जाऊँगा। क्या ही अच्छा हो कि उस उपाय का पता लगे जिससे जन्म मरण के दुःख से छुटकारा मिल जावे। सगे सम्बंधी क्या जानें कि इसके दिल के मन के मनोभाव क्या हैं। वे तो यही देख रहे थे कि इसके नयनों से एक भी अश्रुकण नहीं टपका।

धिक्कार ऐसे बालक परः— वे कहते हैं धिक्कार है ऐसे बालक पर! जो ऐसा पाषाण हृदय हो परन्तु वह तो अपने विचारों में मग्न है कि जब मृत्यु रूपी शत्रु, सिर पर आ ही जावेगा तो उस समय कौनसा शस्त्र कहाँ से खोजता फिरूँगा? तथा किस पर भरोसा करूँगा? अच्छा तो यही है कि अभी से औषधि की खोज करूँ जिससे सारे दुःख दूर हो जावें। इस प्रकार इस घटना ने मूलशंकर के हृदय में वैराग्य उत्पन्न कर दिया और जब आयु १९ (उन्नीस वर्ष) की हुई तो एक अन्य प्रिय सम्बंधी की मृत्यु ने इस विचार को और भी पक्का कर दिया। मूलशंकर का धर्मात्मा चाचा जो उससे अत्यन्त स्नेह करता था, वह भी इसी महामारी की जकड़-पकड़ में आ गया। मूलशंकर को पास बुलाया। देखते ही नयन सजल हो गये जिस पर भतीजे मूलशंकर का हृदय भी भर आया। वह इतना रोया कि नयन सूज गये। वह बहुत तीव्रता से यह अनुभव करने लगा कि मृत्यु रूपी दुःख आने वाला है। चाचा के सदृश न जाने मैं भी कब मर जाऊँ। अतः अति शीघ्र तथा अवश्य अमर होने की औषधि का पता करना चाहिए।

शिक्षाः— प्रिय पाठकवृन्द! मनुष्यों ने आयु पर्यन्त बड़ी-बड़ी घटनायें देखीं। बालकों ने खेलकूद में मूर्तियों को अंग भंग किया। चोरों ने मूर्तियों के आभूषण चुराय। वस्त्र उतार कर ले गये। महमूद सरीखों ने उनको तोड़ा फोड़ा। मन्दिर गिराये गये परन्तु यहाँ किसी के कान पर जूँ तक न रींगी। संसार में नित्य प्रति

सम्बंधियों को मरते देखा तथा सुना कि काल-चक्र से कोई बच नहीं सकता। सिकन्दर ने अपने भुजा बल से सातों वलायतों (महाद्वीपों) को विजय किया परन्तु मृत्यु रूपी प्रबल शत्रु के सम्मुख असहाय व विवश रहा।

न महमूद सरीखा सम्पत्तिशाली, न ईसा सरीखा प्रभुताई (खुदाई) का दावा करने वाला, न राम व कृष्ण सरीखा अवतार तथा न ही बड़े से बड़ा द्रोही कोई उसके पंजे से छूट सका। खेद है कि शत्रु की चढ़ाई (का समय) अनिश्चित है तथापि सेना, तोप व बन्दूक प्रति पल तैयार है परन्तु मृत्यु का आक्रमण जो निश्चित है उसका सामना करने का विचार तक नहीं। एक-एक दो-दो व्यक्ति से सम्बंधित प्रश्नों पर तो दिनरैन मस्तिष्क लड़ाया जावे परन्तु मृत्यु का प्रश्न जो जीव मात्र से जुड़ा है उसे कभी छुआ तक नहीं जाता।

यह मूलशंकर की बुद्धि की दक्षता ही तो है कि चूहे की साधारण सी घटना से कितनी बड़ी शिक्षा ग्रहण की तथा बहिन व चाचा की मृत्यु देखकर किस प्रकार सबसे बड़े प्रश्न के समाधान पर कटिबद्ध हुए। आओ! हम सब इन कथाओं से बुद्धि रूपी नेत्र खोलकर जगत् में चलना सीखें।

दूसरा सर्ग

विद्या-प्राप्ति

लाखों पढ़ाने वाले हैं तथा करोड़ों पढ़ने वाले परन्तु विद्या क्या है अथवा इसका उद्देश्य क्या है, यह बहुत थोड़े जन जानते हैं। हाँ! अन्न धान्य की अदला बदली जिस प्रकार रुपये से होती है इसी प्रकार पढ़ाई की फ़ीस अथवा वेतन से जिस प्रकार व्यापारी वस्त्र अथवा आटा दाल आदि से धन कमाते हैं इसी प्रकार पठित लोग शब्दों अथवा अक्षरों के व्यापार से आजीविका चलाते हैं। आत्मा को जिस ज्ञान की आवश्यकता है– ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति इनका भेद, परस्पर सम्बंध, जगत् के पदार्थ, उनका भोग, सुख तथा शान्ति की विधि, किसी भी बात का जानना कठिन हो रहा है।

यथा सूर्य आँख को बाहर का रूप बताता है वैसे ही विद्या का सूर्य वेद आत्मा को तत्त्व ज्ञान के दर्शन करवाता है परन्तु अब कहाँ का वेद और कहाँ की सत्य विद्या? परिणाम यह है कि नानकदेव जी के कथनानुसार

'नानक दुखिया सब संसार'

जगत् नरक बन रहा है तथा जब तक विरजानन्द व दयानन्द का भाव गुरु शिष्य में उत्पन्न नहीं होता दुःख बढ़ता ही जायेगा। इसे निम्नलिखित घटनाओं में देखिये।

१. गुरु की ताड़ना अमृत है

माता-पिता तथा आचार्य की ताड़ना को शास्त्र अमृत बताता है और लाड चाव को विष। इसी प्रकार विद्या के देने वाले का सन्मान तथा सेवा शिष्य का कर्त्तव्य है। विद्या श्रद्धा से प्राप्त होती है। ऋषि दयानन्द अपने गुरु के लिए यमुना के मध्य से

नित्य प्रति स्वच्छ जल के पन्द्रह अथवा बीस घड़े भर कर लाते थे तथा गुरु की सेवा धर्म मानते थे।

जब गुरु ने मारा:– गुरुजी ने एक बार लाठी से मारा जिस कारण उनका हाथ दुखने लगा तब स्वामी जी ने कहा, "महाराज! मुझे न मारा करें। मेरे वज्र सरीखे शरीर पर चोट मारने से आपके निर्बल हाथों को कष्ट होता है।"

इस चोट का निशान अन्त समय तक स्वामी जी के हाथ पर रहा जिसे देखकर आप सदा गुरु को याद करते और उनकी विद्या व उपकार को धन्यवाद देते रहे। एक बार दण्डी ने जब स्वामी जी को लाठी से दण्ड दिया तो नयनसुख जड़िया ने कहा कि आप इसे न मारा करें। यह गृहस्थी नहीं, संन्यासी है। आपने भविष्य में सन्मान से पढ़ाने का आश्वासन दिया परन्तु स्वामी दयानन्द जी इस कारण नयनसुख से रुष्ट हुए और कहा, "तुमने ऐसा कहकर बुरा किया। गुरुजी मेरे सुधार के लिए मारते हैं न कि वैर तथा शत्रुता से। जैसे कुम्हार ताड़ ताड़ कर घट को बनाता है ऐसे ही गुरुजी मुझ पर दिया करते हैं।"

२. पुत्र! मत मतान्तरों की अविद्या को दूर करो

वृक्ष अपने फल से पहचाना जाता है। बीज अपने अनुकूल ही फल देता है। स्वार्थी गुरुओं के लोभी शिष्यों के काम का यही फल है कि वे विषयों में ही आयु बिता दें परन्तु निष्काम भाव से यदि कर्त्तव्य- केवल कर्त्तव्य पालन किया जावे तो फल कुछ और ही होता है। वह क्या?

इसका उत्तर दयानन्द का समावर्तन संस्कार देगा। दण्डी गुरु विरजानन्द जी मनुष्यों के बड़े पारखी थे। वे कहा करते थे– मेरे कारण मेरे शिष्यों के हृदयों में जो अग्नि धधक रही है, वह एक दिन लपटों के रूप में प्रचण्ड होगी तथा अंधविश्वास, भ्रमजाल व मिथ्या ग्रन्थों का नाश करेगी।

वे अपने इस कथन को बुझारत बने रहने नहीं देते थे। वे स्पष्ट कहा करते थे कि मेरा कार्य कोई करेगा तो दयानन्द ही

करेगा। आपका यह विचार शत प्रतिशत सत्य सिद्ध हुआ।

विदाई का समय आ गया:– निर्धन संन्यासी दयानन्द विद्या-प्राप्ति की समाप्ति करके गुरु से विदाई लेना चाहता है। प्राचीन भारतीय प्रणाली के अनुसार वह आधा सेर लवंग लेकर गुरु की भेंट करता है तथा कर जोड़कर बड़ी विनम्रता से आज्ञा माँगता है।

गुरु:–"दयानन्द! जाते हो तो हमारी दक्षिणा देना धर्म है।"

शिष्य:–"महाराज! जो आज्ञा हो, कहिये।"

गुरु जानता है कि किस शिष्य से बात कर रहा है। न तो आश्वासन दोहराता है। न शपथ दिलाता है–स्पष्ट व सरल शब्दों में कहता है, "मुझे न धन चाहिये और न सम्पदा। मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि पुत्र, विद्या को सफल कर दिखाओ। परोपकार करो। सत्य शास्त्रों का उद्धार करो। असत्य शास्त्रों की अविद्या को मिटाओ। वैदिक धर्म को फैलाओ। यही मेरी दक्षिणा है।"

वीर, धीर, गम्भीर दयानन्द गुरु-दक्षिणा के महत्त्व पर विचार करके अत्यन्त विनम्रता से नमस्कार करके कहता है, "गुरुदेव! आपकी आज्ञा शिरोधार्य। आयु पर्यन्त इसके लिये सर्व सामर्थ्य से यत्नशील रहूँगा।"

गुरु:–"पुत्र! ईश्वर तेरे शौर्य व उत्साह को बढ़ावें तथा मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है और मैं एक अन्तिम उपदेश देता हूँ। मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर तथा ऋषियों की निन्दा है परन्तु ऋषिकृत में नहीं। इस कसौटी को हाथ से न जाने देना।"

३. कृतज्ञता के भाव

गुरुदक्षिणा:–दक्षिणा पर दिये गये आश्वासन को स्वामी जी ने सदा ध्यान में रखा। इसके अतिरिक्त जो भी विद्यार्थी कहीं भी मिलता उसे गुरु जी के पास जाने का सुझाव दिया करते थे। यदि कुछ धन भी कहीं से प्राप्त होता तो अपनी श्रद्धा का परिचय देते हुए तथा अपने बारे सूचना देने के लिये किसी के हाथ दण्डी गुरुजी को भेजते रहते।

गुरुजी से अन्तिम भेंटः— अक्तूबर सन् १८६६ में आपने अन्तिम बार गुरुजी से मथुरा में भेंट की। जब स्वामी जी ने प्रथम बार कुम्भ मेला में सम्मिलित होकर प्रचार का मन बनाया तो आपने यह उचित जाना कि गुरुजी से विचार करके स्वीकृति ली जावे अतः मथुरा में एक पाचक व पाँच अन्य व्यक्ति साथ लेकर पहुँचे। दो अशरफ़ी[1], मलमल का एक थान भेंट करते हुए गुरुजी से आज्ञा माँगी कि मैं कुम्भ के मेला पर सद्धर्म-प्रचार के लिए जाना चाहता हूँ। भागवत खण्डन वाली पुस्तक भी दिखाई।

दण्डी गुरु विरजानन्द जी को जो प्रसन्नता हुई होगी, वह उनका हृदय ही जान सका होगा। सच्चा शिष्य गुरु की आज्ञा के पालन करने को कटिबद्ध हो और गुरु का हृदय प्रफुल्लित न हो, यह सम्भव ही नहीं। स्वामी जी महाराज ने नई जानकारियों की जानकारी दी। गुरुजी शंका समाधान भी किया। दण्डी जी ने आशीर्वाद देकर विदा किया।

दण्डी जी के निधन का समाचारः— शहबाज़पुर में जब गुरुवर विरजानन्द के निधन का समाचार स्वामी जी ने सुना तो आपका मुखमण्डल मुर्झा गया।[2] वैराग्य व शोक के चिह्न स्पष्ट रूप से मुखमण्डल पर दिखाई देने लगे। कुछ क्षण मौन रहकर बोले, "आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।"

शोक को जीत लेने वाला दयानन्द आज इतना शोकातुर हुआ। यह गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा व प्रेम ही के कारण था।

४. आधुनिक काल के शिक्षित लोग दंग थे

गुरु विरजानन्द जी से विद्या प्राप्त करके तथा अन्य कहीं से भी जो सत्य प्राप्त करके स्वामी दयानन्द जी ने विद्या में ऐसी दक्षता व प्रवीणता प्राप्त की कि इस युग में ऐसा मनीषी विद्वान् होना एक असम्भव सी बात कही जा सकती है। यह दक्षता ही तो थी कि इस विद्या व बुद्धिवादी वैज्ञानिक युग में टीका-

---

१. यह एक मुद्रा थी जिसका अब प्रचलन नहीं। 'जिज्ञासु'

२. दण्डी जी का महाप्रयाण वि० सं० १९२५ में हुआ। शहबाज़पुर ग्राम सोरों से पाँच कोस की दूरी पर है। 'जिज्ञासु'

पण्डित जी ने कहा, "मेरे ग्रन्थ में व्याकरण के सब नियम हैं। यह अधूरा नहीं, पूरा है।" स्वामी जी महाराज ने पण्डित जी को कहा, "आप अपने व्याकरण से कोई नियम पढ़िये।" पण्डित जी ने एक नियम पढ़ा। अब ऋषिवर ने १७-१८ वेद मन्त्र बोलकर कहा, "इनमें से किसी मन्त्र अंश पर यह नियम लगायें।"

वह अपने यत्नों में निष्फल सिद्ध हुआ। पण्डित जी बहुत देर तक असमंजस में रहे फिर कहा, "निःसन्देह किसी पर भी यह नियम नहीं लगता परन्तु वेद का व्याकरण पृथक् हो सकता है। यह लौकिक संस्कृत है।"

इस पर स्वामी जी ने कहा, "मेरा आक्षेप व शिकायत भी तो यही है। व्याकरण ऐसा हो जो सर्वत्र कार्य दे। लौकिक संस्कृत के लिये एक व्याकरण पढ़ें। वेद के लिये दूसरे का पता लगायें। यह तो समय का नाश व सिरदर्दी है।" इसके पश्चात् ऋषि जी ने शास्त्र व इतिहास तथा संस्कृत के अन्य ग्रन्थों से श्लोक पढ़कर कहा, "अच्छा, इनमें से किसी पर यह नियम लागू करके दिखायें।"

पण्डित जी दंग रह गये। स्वामी जी के चरण पकड़ लिये और कहा, "आप तो सागर हैं। इससे पूर्व मुझे ऐसा विचार कभी नहीं आया था कि साधारण नियम इतने अपवादित रखते हैं (लागू नहीं होते)। मैंने यह पुस्तक काशी के पण्डितों को भी दिखाया। किसी ने कोई आपत्ति न की। सबने प्रशंसा ही की परन्तु भेद आपसे ही खुला।" इसके पश्चात् ऋषि जी ने पाणिनि का एक सूत्र सुनाया जिसमें विचारधीन नियम का वर्णन था। ऋषि जी ने कहा, "इसे चाहे जिस वेद मन्त्र पर लगा लो। चाहे लौकिक संस्कृत पर। कोई मतभेद नहीं होगा। यह है प्राचीन ऋषियों के पुस्तक की विशेषता अतः ऐसी पुस्तकों की टीका लिखो जिससे संस्कृत विद्या की उन्नति हो।"

६. आदर्श गुरु और शिष्य

यथा मधुमक्खी प्रत्येक फूल के पास जाती है तथा मिठास

लेती है। दयानन्द भी ऐसे ही प्रत्येक विद्वान् के पास इसी प्रकार से पहुँच रहा था। वह ऐसा गुरु चाहता था जो लोभ, लालसा व स्वार्थ से ऊपर हो तथा सन्मार्ग-दर्शन करवाने वाला हो। ईश कृपा से उसे ऐसे गुरु मिले तो विरजानन्द जो वर्षों से ऐसे शिष्य की खोज में थे जो उनके अमूल्य विद्या कोश से संसार को माला माल कर दे। नेत्र विहीन होने से वे कार्य नहीं कर सकते थे तथा सोचते थे कि कहीं दिल में इन अरमानों को लिये हुए ही शरीर न त्याग जावें। दयानन्द की वह धुन कि वर्षों पर्यन्त अमर होने की औषधि की खोज में लगे रहे तथा विरजानन्द की यह लगन कि नेत्रहीन होने पर भी अविद्या अंधकार फैलाने वालों से निरन्तर युद्धरत रहा।

वे दोनों ही एक ही साँचे में ढले हुए थे तथा दोनों का मेल होना सचमुच एक चकित कर देने वाली पहेली थी। दयानन्द द्वार खटखटाता है। दण्डी जी नाम तथा उद्देश्य पूछकर द्वार खोलते हैं और कहते हैं, "हमसे पढ़ना है तो मनुष्यकृत ग्रन्थों को छोड़ दो।"

दयानन्द:–"ठीक है। छोड़ता हूँ।"

दण्डी गुरुजी:–"तुमने जो कहा है कि सारस्वत आदि पढ़ा है तो यह मनुष्यकृत ग्रन्थ हैं। ऋषिकृत शास्त्र और हैं।

दयानन्द:–"महाराज! यह बतायें कि वे कौन-कौन से हैं।"

दण्डी गुरुजी:–"पहले मनुष्यकृत ग्रन्थों को छोड़ो।"

दयानन्द:–मैं सङ्कल्प करता हूँ सब छोड़ दिये।"

दण्डी गुरुजी ने सारस्वत व कौमुदी की अशुद्धियाँ बताकर तथा उनसे संस्कृत विद्या के प्रचार में बाधा पढ़ने की चर्चा करके कहा "मेरे शिष्य तब बन सकोगे जब इन पुस्तकों तथा इनके कर्त्ताओं का मान-सन्मान करना सर्वथा त्याग दोगे।"

दयानन्द ने सच्चे विश्वास से इस पर आचरण किया। कौमुदी के लेखक के चित्र पर जूते लगाये। विद्या प्राप्ति के लिए नम्रता तथा श्रद्धा से गुरु की सेवा में उपस्थित हुए जो निस्वार्थी व सत्यनिष्ठ था।

शिक्षा

१. विद्या सांसारिक आजीविका अथवा टके कमाने के लिये नहीं है। इसका प्रयोजन तो ज्ञान की प्राप्ति है। खाने पीने के समस्त पदार्थ मनुष्यों को मिल ही रहे हैं।[1] आत्मा की आवश्यकता दुःख से छुटकारा है और इसका साधन यथार्थ ज्ञान है।

२. इसी प्रकार विद्या का प्रयोजन निजी स्वार्थ अथवा मान-बड़ाई की प्राप्ति भी नहीं हो सकती। यह तो इच्छा किये बिना भी विद्वान् को मिल जाती है। मानव मात्र का कल्याण तथा परोपकार विद्वानों का लक्ष्य होना चाहिये। जहाँ शिष्य का प्रयोजन केवल धनोपार्जन के योग्य बनना हो तथा शिक्षक को वेतन प्राप्ति के लिए पढ़ाना अभिप्रेत हो तो मनुष्य अपने वास्तविक ध्येय धाम पर नहीं पहुँच सकते। इससे तो ऐसी ही स्थिति बनती है:-

लोभी गुरु लालची चेला दोनों खेलें दाव।
भवसागर में डूबते बैठ पत्थर की नाव।।

३. वेद सच्चाई की खान है। सत्य का स्रोत है। मानव जीवन की सब समस्याओं का समाधान इसमें है। इससे विद्या प्रचार की यथार्थ विधि को जाना जा सकता है। आज वेद प्रचार न रहने से सब मर्यादा बिगड़ रही है। ज्ञान के नाम पर अविद्या फैलाई जा रही है तथा वेद के सच्चे विद्वानों के न होने से आधुनिक शिक्षा पर मिथ्या अभिमान हो रहा है।[2] कृत्रिम दिखावटी अँगूठी बड़े बोल निकाल रही है परन्तु बात यही है कि:-

१. लेखक का अभिप्राय यहाँ यह है कि विद्या-प्राप्ति का मुख्य उद्देश्य तो ज्ञान की प्राप्ति है। आजीविका अथवा धन प्राप्ति में विद्या बहुत बड़ा सहायक साधन है। इसमें किञ्चित् भी शंका नहीं हो सकती। 'जिज्ञासु'

२. आधुनिक शिक्षा पद्धति का सबसे बड़ा दोष यही है कि इसमें डिग्रियों को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त है। 'सत्यं वद धर्मं चर' को इसमें कतई महत्त्व प्राप्त नहीं। शिक्षक योग्य हो भले ही लम्पट, झूठा, छलिया, विषयी व व्यसनी हो। दोषों को private life कहकर उनकी उपेक्षा की जाती है। 'जिज्ञासु'

जब ताव दिया जाता है तो मुख उड़ जाता है।

४. गुरु का, शिक्षक का आदर सन्मान तथा सेवा शिष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है।[१] गुरु तथा माता पिता की ताड़ना को अमृत जानना चाहिये। व्यर्थ का लाड प्यार विष तुल्य मानना, यह निश्चित बात है। शिक्षक शिष्य की भलाई को उससे कहीं अधिक अच्छा जानता है। वह दण्ड भी देता है। जो कुछ उसे नहीं करना चाहिये, सुधार के लिये उससे हटाना तथा करणीय कार्यों की ओर उसका ध्यान दिलाना, यह शिक्षक का उद्देश्य है। इन बातों का भली प्रकार से चिंतन करते हुए शिष्य को गुरु के क्रोध से भी अपनी उन्नति करनी चाहिये।

५. ऋषि लोग अपने आपको सत्य के समर्पित करते रहे। ईश्वर तथा ईश्वरीय ज्ञान के लिये समर्पित अर्पित होते रहे हैं। अपने व्यक्तित्त्व का झूठा प्रदर्शन तथा मान प्रतिष्ठा की भूख को वे विष समझते हैं परन्तु मनुष्य तो इन्हीं बातों पर लट्टू हो रहे हैं।[२] यही वह कारण है कि ऋषि कृत पुस्तकें स्पष्ट रूप से वेद का मार्ग दिखाती हैं तथा मनुष्यकृत पुस्तकें इस मार्ग से भटकाती हैं, हटाती हैं।

किताबों का सच्च झूठ जिसने कंघाला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।।
गुरु का वचन जिसने जी जाँ से पाला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।।
ऋषि ऋण का जिसना फ़ना मूल डाला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।।
पं० चमूपति कृत 'दयानन्द आनन्द सागर से'

---

१. यह प्राचीन आर्ष गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति के सिद्धान्त थे। अब तो शिक्षा भी एक उद्योग धंधा बना दिया गया। लेन-देन तो सब मुद्रा से चलता है अत: अब सेवा, सन्मान, शिष्टता, विनम्रता आदि गुणों के लिए कोई स्थान नहीं है। 'जिज्ञासु'

२. अब तो बड़ा महात्मा, बड़ा गुरु बड़ा योगी संन्यासी वही माना जाता है जिसके मठ में ए०सी० हो, बढ़िया गाड़ी व सब आधुनिक सुख-सुविधायें हों। यह विज्ञापन युग है। 'जिज्ञासु'

तीसरा सर्ग

सच्चा त्याग

ज़रा चश्मे बसीरत खोल गर रखता है बीनाई।
तिरे किस काम आयेंगे ख्यालाते मन व बानी।[१]
अर्थात् तनिक बुद्धि के चक्षु खोल जो देता दिखाई है
तेरी मन मानियाँ यह व्यर्थ की न काम आयेंगी।।[२]

भारत में भगवा वेश बहुत प्रचलित है। नामनाम के साधु व त्यागी लाखों की संख्या में हैं। कोई बाल बच्चों का पालन पोषण नहीं कर सका। किसी की घर में न बनी। कोई वेश्या के पीछे बर्बाद हुआ। कोई सुरापान की लत से लुटा और उजड़ा। किसी ने व्यापार में घाटा उठाया। किसी को उधार ने, ऋण ने सताया व दबाया। इस प्रकार के कारणों से छुपने की आवश्यकता पड़ी तो इस आडम्बर की शरण ली। सच्चे त्याग और वैराग्य पर किसी ने विचारा ही नहीं। जहाँ लाखों-करोड़ों साधुओं के होते हुए पाप व ताप बढ़ रहा है वहाँ एक सच्चा संन्यासी जगत् को सुख तथा शान्ति का मार्ग दिखला सकता है। जैसा कि ऋषि दयानन्द ने कर दिखाया है। ऋषि दयानन्द के कार्य की नींव में सच्चा त्याग ही था जिसके उदाहरण उसके जीवन में आदि से अन्त तक मिलते हैं।

१. गृह-त्याग

मूलशंकर को लगन थी कि मृत्यु पर विजय पाने का उपाय

---

१. 'मन व बानी' ये दो शब्द मुद्रण दोष से ठीक-ठीक पढ़े नहीं गये। हमने अनुमान लगाकर लिख दिये हैं। 'जिज्ञासु'
२. ये दो पंक्तियाँ उपरोक्त पद्य के अनुवाद रूप हमने दी हैं। 'जिज्ञासु'

खोजा जावे अतः सांसारिक कार्यों से मन उचाट रहने लगा।

माता पिता यह जानकर के पुत्र के विवाह के बारे चिन्ता करने लगे कि कहीं बेटा साधु न बन जावे। गृहस्थ के दायित्व बढ़ेंगे तो वैराग्य भूल जायेगा। मूलशंकर ने येन केन प्रकारेण कहा-कहाकर यह प्रस्ताव स्थगित करवा लिया फिर पिता श्री से यह विनती की कि मुझे व्याकरण, ज्योतिष तथा वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन के लिये काशी भेज दो।

पिता ने काशी नहीं भेजाः— पिता ने कहा, "लड़की वाले विवाह करने के लिए बहुत अनुरोध कर रहे हैं। पहली बात तो यह कि जितना पढ़ चुके हो वही पर्याप्त है और पढ़ना चाहो तो यहीं रहकर पढ़ो।" मूलशंकर आग्रह करता है कि पूर्ण पण्डित हुये बिना विवाह करना ठीक नहीं है। इस पर माता भी पुत्र के विचार का विरोध करती है। अन्ततः इतनी बात स्वीकार हुई कि मौरवी[१] के निकट के एक ग्राम में जो एक प्रसिद्ध पण्डित जी रहते हैं उनके पास मूलशंकर अध्ययन करे परन्तु स्वल्प काल में ही उन पण्डित जी ने मूलशंकर के पिताश्री को यह सूचना दे दी कि इसे तो विवाह करने से घोर घृणा है। बस फिर क्या था पिता ने पुत्र को घर वापस बुलवा लिया।

घर पर विचारों की टक्करः—पुत्र यह देखकर चकित रह गया कि विवाह की पूरी तैयारियाँ हो रही हैं। परिवार में दो परस्पर विरोधी भाव कार्य करने लगे। माता पिता तो उस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में थे कि पुत्र दूल्हा बने तथा बहु घर में आय। परन्तु पुत्र इस धुन में था कि मोह बंधन की सकल कड़ियाँ तोड़कर घर से भाग जावे। इधर विवाह की तैयारियाँ पूर्ण हुईं और उधर मूलशंकर ने भी गृह-त्याग का अन्तिम निर्णय ले लिया। वह बाईस वर्ष की आयु में सायं समय बिना बताय घर

---

१. इस पुस्तक के लेखन व प्रकाशन के समय तक ऋषि जी के जन्म स्थान का निर्णय नहीं हो पाया था। तब तक मौरवी को ही ऋषि का जन्म स्थान समझा जा रहा था। 'जिज्ञासु'

से चला गया। इस प्रकार अपने गृह व जन्म स्थान से अन्तिम विदाई ले ली।

२. तपस्वी जीवन

स्वामी जी आग तापने व हाथ सेंकने आदि का खण्डन किया करते थे। वे कहा करते थे कि पुरुषार्थी बनकर धर्म का पालन करना चाहिये। कर्त्तव्य पालन करते हुए जीवन में जो-जो कष्ट आवें उनको सहर्ष सहन करना ही सच्चा तप है। अभिमान, आलस्य, प्रमाद, भोग, विलास आदि सबका त्याग उनके तप में सम्मिलित था।[१] यह उन्होंने अपने जीवन के आरम्भ से अन्त तक अपना लक्ष्य बनाय रखा। सत्य विद्या तथा योग के लिये वे घर से निकले तो स्थान-स्थान पर शारीरिक सुख सुविधा का विचार तजकर भटकते फिरे। जहाँ कहीं किसी विद्वान् योगी की जानकारी मिली, श्रद्धा तथा सच्चे प्रेम की भेंट लिये हुए वहीं पहुँचे। हिमाच्छादित पर्वत मार्ग में बाधक बने। रक्त संचार भी वहाँ बन्द होता है। आप वहाँ घोर विपदा में फँसे।

ऐसे-ऐसे स्थान भी आय जहाँ मानव की आकृति भी देखने को न मिले। कँटीली झाड़ियाँ भी आईं। काँटेदार वृक्षों की शाखों ने एक दूसरी से उलझ कर मार्ग को अगम्य बना दिया था। आपको रींग-रींग कर चलना पड़ा। चमड़ी खिंच गई। रक्त बहने लगा। वस्त्र फट गये। इसी प्रकार कहीं जंगली रीछ से सामना करना पड़ा और कहीं हाथी से। सूने घने बीहड़ वनों में जहाँ कहीं आने जाने का मार्ग ही नहीं था, यह अकेले ही बिना किसी साधन सामग्री के नंगे पाँव, नंगे शरीर, अंधेरी रात, भूखे पेट, खाना, पानी आदि कुछ भी नहीं।

---

१. 'आर्याभिविनय' में भी इन दुर्गुणों के परित्याग व सद्गुणों को ग्रहण करने की बहुत प्रार्थनायें हैं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सन्तोष की परिभाषा 'अत्यन्त पुरुषार्थ' लिखी है। सत्यार्थप्रकाश में यत्र तत्र प्रमाद से बचने के लिये उपदेश मिलते हैं। परमेश्वर की कर्म करने की आज्ञा को जो कोई तोड़ेगा उसे कभी सुख नहीं मिल सकता। ऐसा ऋषि ने लिखा है। 'जिज्ञासु'

इस प्रकार के अनेक डरावने दृश्य देखने में आय परन्तु इस अखण्ड ब्रह्मचारी ने अपनी पवित्र इच्छा की पूर्ति के लिये जो सङ्कल्प धारण किया उसे अत्यन्त दृढ़ता से पूर्ण करके दिखाया। साधारण मनुष्य जिन बातों से साहस व उत्साह शून्य हो जाते हैं स्वामी दयानन्द जी ने महीनों व वर्षों तक निरन्तर पूर्ण पुरुषार्थ व शूरता, वीरता व धीरता से उनको सहन किया। सच्चे तप का ऐसा दूसरा दृष्टान्त विश्व–इतिहास में मिलना अति कठिन है।

न केवल आरम्भिक काल में यह तप साधा प्रत्युत इसके पश्चात् भी सदा सरलता सादगी को दृढ़तापूर्वक अपनाय रखा। कई वर्ष तक एक लंगोट में ही विचरण करते रहे। उससे स्नान किया। उसे ही सूखने डाल देते हैं। समाधि लगाई। शीत ऋतु व ग्रीष्म ऋतु बिना वस्त्रों के ही बाहर बिता दी। नगरों में जाना पड़ा तो भी वस्त्र नहीं ओढ़ा। आवश्यकता भी हुई तो अपने ऊपर फूस डाला। खाने में कच्चे जंगली बैंगन से निर्वाह कर लिया। कहीं दूध फल पर ही निर्वाह करते रहे। कोलकाता में जब वस्त्र पहनने की प्रेरणा हुई और आपने उसे स्वीकार किया तो भी आडम्बर रहित, सादगी से ही रहे।

जब कभी कोई मूल्यवान् वस्तु भेंट स्वरूप मिली तो जो जिसके योग्य समझी उसे दे दी। स्वयं कभी किसी प्रलोभन आदि में नहीं आय। जब गृहस्थों में भोजन की व्यवस्था होती तो भी सादा भोजन के लिये अनुरोध किया करते थे। जीवन पर्यन्त सब प्रकार के कष्ट झेले। आवश्यकताओं व सम्बन्धों को थोड़ा ही रखा। जीवन के अन्तिम श्वास तक सारी शक्ति धर्म रक्षा में ही लगाई। इससे श्रेष्ठ तपस्वी जीवन और क्या होगा?[१]

१. महर्षि की निन्दा में विरोधियों ने कई घटिया पुस्तकें लिखीं। ऐसे निम्न स्तरीय साहित्य का उत्तर लेखक ने **'निष्कलङ्क दयानन्द'** इस खोजपूर्ण उर्दू पुस्तक में दिया। इस पठनीय प्रामाणिक पुस्तक को हमने हिन्दी में अनूदित करके प्रकाशित किया है। प्रबुद्ध पाठक ऋषि जीवन की इस कुंजी को अवश्य पढ़ें। यह पुस्तक भी ज्ञान का भण्डार है। 'जिज्ञासु'

३. वाम मार्ग का इतना प्रचार!

टीहरी (गढ़वाल) का नगर साधुओं एवं राज पण्डितों के आधिक्य के लिये विख्यात था। स्वामी जी सत्य विद्या की खोज में वहाँ भी पहुंचे। एक दिन एक पण्डित ने आपको निमन्त्रण दिया। नियत समय व्यक्ति बुलाने आया। स्वामी जी एक ब्रह्मचारी सहित वहाँ पहुँचे परन्तु उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ जब वहाँ एक पण्डित को मांस काटते व बनाते देखा। इस पर आपको अत्यन्त घृणा हुई परन्तु आगे जाकर क्या देखा कि बहुत से पण्डित मांस, हड्डियों के ढेर तथा पशुओं के भुने हुए सिरों पर कार्य करते हैं।

गृहपति ने अत्यन्त प्रसन्नता से कहा कि भीतर चले आयें। स्वामी जी यह कहकर वहाँ से निकल आय कि आप अपना कार्य करते जायें, मेरे लिये कष्ट मत करिये। थोड़ी देर के पश्चात् वह पण्डित डेरे पर पहुँचा तथा निमन्त्रण में चलने को कहा। उसने यह भी बताया कि मांस आदि उत्तम भोजन केवल आप ही के लिये बनाय गये हैं। स्वामी जी ने कहा, "यह सब वृथा व निष्फल है। इसको खाना तो क्या मुझे तो देखने से ही रोग हो जाता है। आप माँस भक्षी हैं परन्तु मैं फलाहार करता हूँ।" इस पर वह लज्जित होकर चला गया।

४. पुस्तकों को फाड़ नदी में फेंका

स्वामी जी ने कई पुस्तकें पढ़ी जिनमें नाड़ी चक्र अर्थात् मानवीय धमनियों का वर्णन था। उनमें इस विषय की विस्तारपूर्वक चर्चा थी। उसको पढ़ना, समझना तथा स्मरण करना कठिन था। ऐसे कारणों से स्वामी जी को संदेह हो गया यह सत्य भी है कि नहीं। उन्हें सन्देह निवृत्ति की उत्कट इच्छा थी परन्तु ऐसा अवसर न मिल पाया।

"एक दिन दैवसंयोग से एक शव नदी में बहता हुआ मिला।"[१] आपने अपनी सन्देह निवृत्ति का उपयुक्त अवसर

१. ऋषिवर के आत्म चरित से मिलान करके हमने यहाँ कुछ शब्द बढ़ाये हैं। 'जिज्ञासु'

जानकर उस शव को नदी में उतर कर बाहर निकाला चाकू से उसे काटा। उसमें से हृदय को निकाला। ध्यानपूर्वक उसे देखा। जाँच पड़ताल की। अपनी पुस्तकों से उसका मिलान करके पुस्तकों में वर्णित बातों को शव के अनुसार नहीं पाया। "पुस्तक और शव लेशमात्र भी परस्पर नहीं मिलते।" तब आपने पुस्तकों को फाड़कर, टुकड़े–टुकड़े करके शव के साथ ही इन्हें नदी में फेंक दिया।

५. मनुष्य कृत पुस्तकों का वाचन नहीं करूँगा

उन्नति का आधार ज्ञान है। ज्ञान का स्रोत वेद है। वेद का मार्ग दिखाने वाले ऋषिकृत ग्रन्थ हैं और उससे भटकाने व हटाने वाले मनुष्यकृत जिनमें अयथार्थ बातें हैं। इनमें यदि कुछ सत्य है तो वह विषैली मिठाई सदृश त्याज्य है। स्वामी विरजानन्द जी ने इसी लिये अपने शिष्य दयानन्द को विदाई के समय मनुष्यकृत ग्रन्थों से सावधान किया था और इसी लिए उन्होंने सदैव ऐसे ग्रन्थों से लोगों को बचाया। आगरा में जब आपकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि हुई तो दो तीन वेदान्तियों ने पञ्चदशी की कथा सुनाने की विनती की। स्वामी जी ने कहा कि मैं प्रत्येक ऋषिकृत ग्रन्थ की कथा सुनाने के लिये तैयार हूँ परन्तु मनुष्यकृत ग्रन्थ की कथा नहीं सुना सकता।

जिसे भ्रम हो, वह ब्रह्म नहीं:– उत्तर मिला पञ्चदशी ऋषिकृत है जिसे शंकराचार्य के शिष्य विद्या अरण्य ने बनाया है। कथा आरम्भ हो गई परन्तु एक स्थान पर ऐसा लिखा था कि कभी–कभी ब्रह्म को भी भ्रम हो जाता है। वहीं ओम् तत्सत कहकर आपने पत्रे रख दिये तथा कहा, "जिसको भ्रम हो वह ब्रह्म (परमेश्वर) कैसा? गुरुजी ने कहा था, ईश्वर की निन्दा करने वाले ग्रन्थ को मनुष्यकृत समझो।" इसके पश्चात् बहुत अनुरोध किया गया परन्तु महाराज ने उसे हाथ तक नहीं लगाया।

६. सारा संसार मेरा परिवार

सर्वव्यापक परमात्मा हमारा पिता है। यह जगत् हमारा घर है।

प्राणिमात्र हमारा परिवार है परन्तु खेद है हमारी अल्प बुद्धि पर जो हमारे हृदयों को संकुचित बना रही है तथा हम प्राणिमात्र से प्रेम हटाकर केवल मनुष्यों को ही अपना जानते हैं। बुद्धि और सुकड़ती जाती है। कहीं देश, कहीं जाति तथा कहीं अपने मज़हब तक ही हमारा सम्बन्ध रह जाता है। इससे भी गिरे तो अपना नगर व परिवार ही प्यारा लगता है। परन्तु संकीर्णता में जब अत्यधिक उन्नति हुई तो केवल अपनी काया अथवा विषय सेवन की धुन लगी होती है।

संसार जाय नरक में। दूसरे प्राणी पडें चूल्हे में सुख-सम्पत का नाश हो। लोग आचार हीन हों, अविद्या में भटकें तो क्या हानि! हमें तो अपने कल्पित सुख से काम है। आह! किस शिखर से मनुष्य गहरी खाई में जा गिरे। आज मानवता के उसी उच्च शिखर पर कोई व्यक्ति पहुँचा दिखाई दे, यह असम्भव प्रतीत होता है। परन्तु धन्य है ऋषि दयानन्द जिसने इस असम्भव को निज जीवन में सम्भव करके दिखा दिया।

सम्वत् १९२४ वि० का कुम्भ हरिद्वार में हो रहा है। लाखों साधु एकत्र हो रहे हैं। जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों-वर्णों की जातियाँ तथा उनके आगे और छोटी-जातियाँ बन गई हैं इसी प्रकार संन्यास मण्डल भी गिरि, पुरी, भारती आदि के नाम से दस भागों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डली वाले बड़ी ठाठ से डेरा जमाते हैं। अपने-अपने डेरों की राजाओं के सदृश शान शोभा बनाते हैं। वैशाखी के दिन गंगा-स्नान के लिए प्रत्येक सम्प्रदाय को आगे होने की लगी है। शाही शोभा यात्रा निकल रही है। साधुओं की सजधज देखकर गृहस्थी भी दंग हैं। कहाँ त्याग का आश्रम! और कहाँ इस आडम्बर पर लट्टू होना। सेठ श्रीमन्त लोग भारी धन व्यय करके लंगर लगाते हैं। भण्डारे करते हैं तथा भिखमंगे निकम्मे बैठे-बैठे मौज उड़ाते हैं। यदि कुछ काम है तो भाँग व चरस से है। इससे बढ़कर यह बात कि चरस की निकालकर जब उसे राख कर देते हैं तो कहते हैं कि चाँदी

बन गई। देश भर से भक्तजन पहुँचते हैं तथा मेला को देखकर हर्षित होते हैं और यहाँ वहाँ यथाशक्ति भेंट चढ़ाते हैं।

ऐसा कोई दिखाई नहीं देता जो इस आडम्बर के गुण–अवगुण पर विचार करे परन्तु सबको छोड़कर सप्त सरोवर पर चलिये। वह देखो, एक पताका **"पाखण्ड मर्दन"**[१] लहरा रही है। यहाँ एक महात्मा विचारों में डूबा है "यह क्या अधोगति का दृश्य है! वह त्याग, उपकार, सरलता की मूर्तियाँ कहाँ तथा ये साधु कहाँ। हाथी, घोड़े, रूपहरी, स्वर्णिम (स्वर्ण जड़ित) झूले, मखमली तकिये, स्वर्णिम गुदगुदे गदेले, स्वर्ण कङ्कन तथा चाँदी के उगलदान रखे हैं परन्तु नाम रखवाया है उदासी निर्मल साधु।[२] शोक! गृहस्थी अविद्या में भटकते होंगे। सर्वत्र लुट रहे हैं। राजा लोग हैं तो वे चाटुकारों से घिरे हैं तथा संसार को पाप में डुबोने के लिये धन की वर्षा कर रहे हैं। विद्वान् हैं तो सत्य से विमुख है। यही नहीं कोई सत्य के लिये साहस करे तो उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचते हैं। आज लाखों मनुष्य समस्त भारत के प्रतिनिधि इकट्ठे हैं परन्तु सब मनुष्य पूजा व मूर्तिपूजा में डूबे हैं। कहाँ आत्मदर्शी योगी तथा ऋषि व्यास व कपिल से तत्त्ववेत्ता तथा कहाँ राम व सीता सरीखे सन्ध्या–प्राणायाम के करने वाले तथा कहाँ परमात्मा के उपासक एक–दो भी हों तो सुधार भी हो परन्तु यहाँ तो आकाश ही फट रहा है।

ये विचार इस विचित्र पुरुष के हृदय को तीर सदृश बेंध रहे

---

१. पं० लेखराम जी ने पताका का यही नाम लिखा है परन्तु इसका नाम 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' प्रचारित हो गया है। अर्थ तो दोनों का एक ही है। 'जिज्ञासु'

२. आर्यसमाज एक शताब्दी तक साधुओं के भोग विलास व वैभवशाली मठों, आश्रमों की पोल खोलता रहा परन्तु अब तो देश भर में साधुओं में साधनों की ऐश्वर्य की प्रतियोगिता चल रही है। साधु उद्योगपतियों के तुल्य हो रहे हैं। नामधारी आर्य बाबे भी इस होड़ में पीछे नहीं। बौद्ध विहार बौद्धों को ले डूबे। आज के मठाधीश सबको लेकर डूबेंगे। यह निश्चित है। 'जिज्ञासु'

हैं। इस पर यह चिन्ता थी कि वैदिक धर्म के लोप होने से ऋषि सन्तान आय दिन ईसाई व मुसलमान होती जाती है। कितने मत मतान्तर प्रचलित हैं। किस-किसका सामना हो। कई बार ऐसे विचार साहस व सङ्कल्पों को तोड़ते हैं। बोली भाषा के भेद व रीति रिवाजों की भिन्नता, पुस्तकें (धर्म ग्रन्थ) भिन्न-भिन्न। मनुष्यों में न शरीर का बल, न आत्म बल, न बुद्धि निर्मल और न मन उजला, कोई एक रोग हो तो उपाय भी सोचें परन्तु यहाँ तो बुद्धि हैरान है। इस धर्म प्रधान देश की यह स्थिति है तो शेष संसार को तो कहना ही क्या?

बार-बार ऐसे विचार आते हैं परन्तु ब्रह्मचर्य बल तथा तप से यह आत्मा बहुत बलवान् हो चुका है अतः इन निराशाजनक विचारों का प्रभाव देर तक नहीं रहता। मन से यह आवाज़ आती है कि तू औरों के समान असावधान मत बन। रोग का पता लगने पर औषधि उपचार न करना बहुत बड़ा पाप है। उठ! पुरुषार्थ कर। साहस से कार्य कर। सोतों को जगा। लुटतों को बचा। पुरुषार्थी की परम पुरुष परमेश्वर सहायता करता है।

'हिम्मतें मर्दां मददे ख़ुदा'[1]

इस ध्वनि को सुनना था कि 'परोपकाराय, का सच्चा अर्थ हृदय पर प्रकट हो गया और दृढ़ सङ्कल्प करके लोकोपकार, देश सुधार के लिये सर्वस्व स्वाहा करने की ठान ली! व्याख्यान में देश की दुर्दशा का वर्णन करते हुये गला रुन्ध गया और समाप्ति पर **'सर्वं वै पूर्णथ्ठं स्वाहा'** कहकर अपना सब कुछ त्याग दिया। पुस्तक, पात्र, पीताम्बरी धोतियाँ, रेशमी वस्त्र, दोशाले व पैसे जो कुछ भी पास था सब बाँट दिये। जो जिसके योग्य था उसे दे दिया। कैलाश पर्वत बोले, "यह क्या?" उत्तर दिया, "जब तक आवश्यकतायें नहीं घटाऊँगा स्वाधीन नहीं हो सकता।" मैं

१. परमात्मा उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। यह फ़ारसी सूक्ति ऋग्वेद की सूक्ति न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। ऋ० ४-३३-११ का रूपान्तर है। अंग्रेज़ी में इस सूक्ति का डॉ० अविनाश चन्द्र जी वसु ने बड़ा सुन्दर अनुवाद किया है "Learned befriends none but him who has toiled". 'जिज्ञासु'

सत्य कहना चाहता हूँ और यह बंधन रहित हुए बिना सम्भव नहीं। पाठकवृंद! यह सर्वस्व त्याग करने वाला शूरवीर ऋषि दयानन्द था जिसने इस काल में अपने आचरण से सिद्ध किया कि सारा संसार मेरा परिवार है, कुटम्ब है।

७. स्वार्थी भगवा वेशधारियों से बचो

बचो इन ठक वेशधारियों से :— रावण ने साधु-वेश में सीता का अपहरण किया। वैसे ही वेशधारी विभिन्न विधियों से बहुत अनुभवी लोगों तक को ठग रहे हैं। इस अवस्था में मूल शंकर सरीखा सरल हृदय कब बच सकता था। वह गृह-त्याग करके अपनी लगन में मगन भटकता फिरता था कि भिखमंगों का एक टोला उसे मिल गया जिनमें से एक वैरागी ने एक मूर्ति जमा रखी थी। मूलशंकर के हाथ में अंगूठी देखकर मीठी-मीठी बातें करने लगा और जब उसके घर बार त्यागने का वृत्तान्त सुना तो समझा कि बस दाल अब गली कि गली। चिढ़ा कर उसे कहा, "हाथ में स्वर्ण आभूषण (अंगूठियाँ) पहने तुम वैराग्य की सिद्धि कैसे करोगे?" सरल हृदय युवक ने तीनों अंगूठियाँ तथा रुपये मूर्ति के अर्पण कर दिये। झूठे वैरागी एवं संन्यासी वास्तव में इस पद्य के अनुरूप है:—

तर्के दुनिया ब मर्दम आमोज़न्द।
ख़्वेशतन सीमोओ ग़ला अंदोज़न्द॥[२]

८. इन सबको गंगा में बहा दे

मिर्ज़ापुर में राजनाथ शर्मा स्वामी जी के पास पठन-पाठन के लिये ठहरा। वह भोजन बनाता तथा विद्या अध्ययन भी करता

---

१. कभी हरियाणा के यशस्वी नाटककार व लोककवि श्री यशवन्तसिंह वर्मा टोहानवी ने लिखा था:—
कर दिया बदनाम तुमने साधुओं के वेश को।
लूट करके खा गये तुम कौम को व देश को।। 'जिज्ञासु'

२. इस फ़ारसी पद्य का अर्थ है, संसार को त्यागने का तो लोगों को उपदेश देते हैं आप धन सम्पदा-चाँदी व अन्न संग्रह करते-इकट्ठा करते हैं। 'जिज्ञासु'

था। एक दिन प्रातः समय स्वामी जी आय तो क्या देखा कि वह आदित्य हृदय का पाठ करता था। स्वामी जी आय और उसकी सब पुस्तकें उठाकर ले गये। इन्द्रजाल, आदित्य हृदय आदि।

स्वामी जी ने पूछा, "आदित्य के हृदय का पाठ कितनी बार करते हो?" बोला, "आपके पास आने से पहले २१ पाठ प्रतिदिन किया करता था परन्तु, अब तो छुप-छुपाकर एक आध कर लेता हूँ।"

ऋषिवर ने पूछा, "इन्द्रजाल आदि सबको मानते हो?"

राजनाथ शर्मा ने उत्तर दिया, "जाँच नहीं की परन्तु यह निश्चित है कि आपके पास रहने से सब भेद मिल जावेगा।"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "इन सबको गंगा में बहा दो और उठ खड़ा हो अन्यथा अपने घर चला जा।"

राजनाथ ने अविलम्ब उन्हें गंगा में फेंक दिया तथा अष्टाध्यायी पढ़ने लगा।

९. भोजन का विचार ही नहीं आया

१. स्वामी जी महाराज बरारी के पक्के घाट पधारे तो बाबू नन्दन ओझा मिले जिन्होंने आपकी बातों से बहुत कुछ सीखा व प्रभावित हुये। उन्होंने सायंकालीन भोजन के लिये पूछा तो आपने स्वीकार नहीं किया। कहा, "देर बहुत हो गई है तथा दूसरे हम जंगली बैंगन खाकर निर्वाह कर लेते हैं।" प्रातः आय तो पता चला कि स्वामी जी तो आधी रात को ही प्रस्थान कर गये परन्तु श्री महाराज तो योगाभ्यास करने गये थे उसी समय आ गये।

पुनः ओझा बाबू ने भोजन के लिये कहा तब उसके सन्ध्या गायत्री जानने के बारे संतुष्टि करके स्वीकार किया। सायं समय वह प्रीतिपूर्वक भोजन बनवाकर लाया परन्तु स्वामी जी को अनुपस्थित पाया। जब बहुत प्रतीक्षा करने पर भी न आय तो पुजारी के कहने से भोजन वहीं धर कर चला गया। प्रातः मन्दिर पहुँचा तो देखा कि भोजन तो वहीं पड़ा था। उस पर चींटियाँ चढ़ रही थीं। पुजारी ने कहा, "स्वामी जी तो रात भर नहीं आय।"

राजनाथ जी के नयनों की अश्रुधारा– स्वामी जी आय तो ओझा ने कर जोड़कर कहा, "महाराज! आपने भोजन नहीं किया। क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है?"

स्वामी जी हँस कर बोले, "भाई, आज कोई पर्व है। अतः गंगा के उस पार भारी मेला था। कई लोग सङ्कल्प कर ब्राह्मणों को अपनी कन्यायें दान में देते थे।[१] इस प्रकार के अज्ञान से संसार में व्यभिचार तथा दुःख फैल रहा है। इसी विचार में मुझे भोजन का विचार नहीं आया।"[२] इस उत्तर को पाकर बाबू जी के नयनों से टप-टप अश्रुकण बहने लगे।

१०. मुझे इस शब्द से गुरुडम की बू आती है

लाहौर में एक बार बाबू शारदा प्रसाद ने आर्यसमाज के सदस्यों से विचार विमर्श करके यह प्रस्ताव रखा कि स्वामी जी महाराज को समाज का संरक्षक सरीखी कोई उपाधि दी जावे। सब लोगों ने इसका करतल ध्वनि से स्वीकार किया। इस पर ऋषिवर मुस्करा कर बोले, "मुझे तो इस शब्द से गुरुडम की गंध आती है। मेरा मिशन तो गुरुडम आदि को उखाड़ फेंकने का है न कि स्वयं ही गुरुडम चलाकर एक नवीन पंथ खड़ा करने का है और कहा कल को यदि इस प्रकार की पदवी से मेरा ही

---

१. इस प्रकार की कुरीतियों व कुप्रथाओं का वर्णन करते हुए कलेजा फटता है। पं० लेखराम जी ने कुरुक्षेत्र के सूर्यग्रहण के मेला पर यह दुःखदायी दृश्य देखा। एक सेठ ने अपनी पत्नी ही ब्राह्मा को दान में दे दी फिर पर्याप्त धन देकर उससे वापस ली। हमारी पुस्तक अमर कथा में यह घटना सप्रमाण सविस्तार दी है। पाठक इस पुस्तक को पढ़ें। 'जिज्ञासु'

२. इन शब्दों से ऋषिवर की अन्तः वेदना फूट-फूट कर निकल रही है। उनकी मनःस्थिति को हम ऐसे व्यक्त कर सकते है:–
इक टीस जिगर को लगती है,
इक दर्द सा दिल में होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं,
जब चैन से आलम सोता है।।

सिर फिर जावे तो। और यदि मैं बचा रहा तो मेरी गद्दी पर बैठने वाला ही कुछ करने लग जावेगा। फिर आप लोगों को बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। वही बुराई पैदा हो सकती है जो अन्य नवीन पंथों को पेश आई है अतः ऐसा कोई भी सुझाव कतई स्वीकार्य नहीं होना चाहिये।" बाबू जी ने कहा, "तो फिर हम आपको इस समाज का परम सहायक कहेंगे।"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "मुझे परम सहायक कहोगे तो उस जगदीश जगत् गुरु परमेश्वर को किस नाम से पुकारोगे?" अन्ततः यह कहा, "मेरा नाम आर्यसमाज के सहायक सभासद के रूप में अंकित कर लें। जैसे अन्य लोग सहायक हैं, मैं भी एक सहायक हूँ।"[१]

---

१. संसार में कहीं भी ईश्वर को कोसने, रगड़ने, ईश्वर की निन्दा करने व न मानने पर कहीं भी कोई न तो मारा गया, न जलाया गया और न फाँसी पर चढ़ाया गया। कटुता की, वैर-द्वैष व घृणा की जड़ तो बिचौलिये हैं। पैगम्बरवाद, अवतारवाद व गुरुडम के कारण कलह व झगड़े हैं। पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी के ये मार्मिक शब्द इतिहास का निचोड़ हैं—

"Much of the bitterness which we find in religious circles is due not to God or His worship but to the mediators, prophets, agents, priests and the like who pretend to have monoplised the benefits of spirituality for themselves or for their followers."

See Vedic culture p.53.

अर्थात्—पूजा उपासना के, भक्ति के सब लाभ अपने व अपने चेलों के लिये मानने वाले इन बिचौलियों के कारण ही धार्मिक जगत् का सारा वैर, विरोध व वैमनस्य है। सब नवीन मत ऋषि द्वारा गुरुडम के खण्डन पर ऋषि के निन्दक रहे। अब तो एक पौराणिक महात्मा श्री राम सुखदास जी ने भी यह लिखा है कि गुरु अपने साथ चेलों को जोड़ते हैं। भगवान् से तोड़ते हैं। आपने गुरुडम की कड़ी निन्दा की है। 'जिज्ञासु'

११. मेरा कोई स्मारक चिह्न न बनाना

एक दिन कविराज श्यामलदास जी[१] ने विनती की, "स्वामी जी आपका स्मारक चिह्न बनाना चाहिये।" स्वामी जी महाराज ने कहा, "नहीं! मेरी भस्म को भी मेरे मरणोपरान्त किसी खेत में डाल दिया जावे। यह खाद बनकर लोकोपकार के काम आवेगी।[२] मेरा कोई स्मारक न बनवाना। ऐसा न हो कि मूर्तिपूजा आरम्भ हो जाये।" कविराज जी आपकी प्रतिमा बनवाना चाहते थे परन्तु ऋषि जी ने कहा, "ऐसा मत करना। मूर्तिपूजा की नींव यही है।"

१२. श्री स्वामी जी महाराज जब उदयपुर (मेवाड़) राज्य में थे तो एक दिन राणा जी ने आपको अकेला पाकर बहुत अनुनय-विनय करके यह प्रार्थना की कि आप राजनीति के विरुद्ध मूर्तिपूजा का खण्डन न किया करें। यह तो आप जानते ही हैं कि यह राज्य एकलिङ्गेश्वर महादेव के अधीन है। आप वहाँ के महन्त बन जावें। कई लाख के चढ़ावे की गद्दी के आप स्वामी होंगे तथा यह राज्य भी धार्मिक दृष्टि से एक प्रकार से इस मन्दिर के अधीन होगा। यह चर्चा महाराणा ने कुछ इस उत्तम ढंग से की कि उनको कोई बनावट न लगी।

यह सुनते ही महर्षि ने अपने मन्यु (सात्विक आवेश) का

---

१. आप मेवाड़ राज्य के विश्वप्रसिद्ध विद्वान्, कवि, इतिहासकार व ऋषि भक्त हुए हैं। आपको आर्यसमाज में सर्वप्रथम महामहोपाध्याय की उपाधि दी गई। पं० आर्यमुनि जी ऐसे दूसरे आर्य विद्वान् थे।" 'जिज्ञासु'

२. इसी पर आचार्य चमूपति जी ने लिखा है–
है मरकर भी जीतों के काम आने वाला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।।
ऋषि के इस विचार, व्यवहार व मृत्यु इच्छा के दूरगामी परिणाम निकले। सनातनी महात्मा रामसुखदास जी की 'मृत्यु इच्छा death will' पठनीय है। वह महर्षि की इस घटना का प्रतिबिम्ब मानना चाहिये। 'जिज्ञासु'

परिचय देते हुए कहा, "आप प्रलोभन देकर उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की आज्ञा भंग करवाना चाहते हैं, इस छोटे से राज्य व इसके मन्दिर को मैं एक दौड़ लगाकर पार जा सकता हूँ। आप मुझे कदापि ईश्वर व वेद की आज्ञा का उल्लंघन करने पर बाध्य नहीं कर सकते अतः आप अपनी वाणी को सीमा व संयम में रखिये। लाखों जनों की आस्था व विश्वास मुझसे जुड़ा हुआ है। मुझे प्रत्येक प्रकार से यह ध्यान रहता है कि सत्य से काम लूँ। मेरा व्यवहार सत्यमय हो।"

महाराणा आपके दृढ़ धर्मभाव से दंग रह गये तथा निवेदन किया, "मैंने परीक्षा के लिये ऐसा कहा था। अब मुझे पहले से भी कहीं अधिक यह निश्चय हो गया कि वेदादेश के पालन करने में आप कितने दृढ़ प्रतिज्ञ हैं।"[१]

१३. सांसारिक धंधों से अलिप्त

मेवाड़ राज्य में एक बार कुछ भूमिपति स्वामी जी को मार्ग में मिल गये तथा एक अभियोग के सम्बन्ध में कुछ कहा। महाराणा सज्जनसिंह पचास गज़ की दूरी पर खड़े महाराज की ओर देख रहे थे। स्वामी जी ने कुछ कहा और वे चले गये। राणा जी ने अपने एक विशेष व्यक्ति को दौड़ाया कि अभियोग वालों

---

१. इस घटना पर पं० चमूपति जी की ये पंक्तियाँ स्मरणीय हैं–

तिरे राज की भी तो हद है मुकरर
जो मैं चाहूँ इक दौड़ में जाऊँ बाहर
है बे इन्तहा राज साईं का मेरे
तिरी जब मैं मानूँ कि भाग आऊँ उससे

२. कुँवर सुखलाल जी आर्य मुसाफ़िर के दो पद्य और पठनीय व स्मरणीय हैं–

तेरी गद्दी ही क्या गद्दी है जिस पर धर्म को छोड़ूँ
न छोड़ूँ साथ मिलती हो यदि गद्दी भी इंदर की
दुनिया के कुत्ते ही को पालो ज़र के टुकड़ों पर
हम फ़कीरों को मगर ज़ंजीर से ज़र की

फ़ारसी शब्द ज़र का अर्थ है धन सम्पदा, स्वर्ण।। 'जिज्ञासु'

से जाकर यह पूछो कि उन्होंने स्वामी जी को क्या कहा? तथा स्वामी जी महाराज ने उत्तर में क्या कहा?

महाराणा द्वारा भेजा व्यक्ति दूसरे मार्ग से उन्हें जा मिला जिससे उन्हें यह पता न चले कि वह दरबारी व्यक्ति दरबार से आया है। उक्त दरबारी के प्रश्न करने पर उन्होंने बताया कि हमने महाराज सभा में अपील की थी। इसी के बारे में स्वामी जी से कहा।

फिर उस दरबारी ने पूछा कि स्वामी जी ने क्या उत्तर दिया? कहा, "हम साधु हैं, हमें सांसारिक राजाओं के काम से कुछ भी लेना–देना नहीं, आप राणा जी से कहो।"

यह वृत्तान्त जब महाराणा जी को सुनाया गया तो वह बोले, "मैंने क्या कहा था? भला सांसारिकता से अलिप्त ऐसा व्यक्ति आपने कोई देखा है?"

१४. मिथ्या समाचार के प्रकाशन पर तर्जना

स्वामी जी के एक सुयोग्य श्रद्धालु गोपालराव हरि शर्मा ने 'दयानन्द दिग्विजयार्क' पुस्तक में एक घटना देते हुए एक भ्रामक बात लिख दी। इस भूल की ओर एक नवीन वेदान्ती साधु अमृतराम जी का ध्यान गया। साधु जी ने इस विषय में ऋषिवर को पत्र लिखा। यह पत्र पाकर ऋषि जी ने गोपालराव हरि जी को एक पत्र लिखकर बहुत मधुर शब्दों में तर्जना की।

गोपालराव जी ने (किसी से सुन-सुना कर) यह लिख दिया कि चित्तौड़ में महाराणा सज्जन सिंह दिन में दो बार ऋषिवर से मिलते रहे। यह तथ्य नहीं था। ऋषि जी ने गोपालराव जी को स्पष्ट लिखा कि साधु का कथन सत्य है। शोक! कि आपने सुन–सुनाकर असत्य लिख दिया। इस स्थान पर महाराणा केवल तीन बार ही मुझे मिले थे। आपका भाव तो शुद्ध है। आप सत्य से प्यार करते हैं और इसी दृष्टि से उपकारक कार्य कर रहे हैं परन्तु जिस बात का ज्ञान न हो उसके लिखने का कदापि साहस मत करें। **थोड़ा सा भी असत्य हो जाये तो सम्पूर्ण निर्दोष**

कृत्य भी दूषित हो जाता है।[१]

गोपालराव जी ने भी यह पत्र पाकर अपनी भूल को अत्यन्त विशाल हृदय से स्वीकार किया तथा क्योंकि ऋषि जी ने उपरोक्त साधु का पत्र भी भेज दिया था अतः गोपाल जी ने उन्हें उत्तर दिया जिसमें भूल पकड़ने के लिए उनको बहुत-बहुत धन्यवाद दिया और लिखा कि मैंने उदयपुर के कई सज्जन भद्रपुरुषों को लेख दिखलाया था कि जो अशुद्धि हो बतलावें परन्तु किसी ने भी पता न दिया। आपने बहुत कृपा की परन्तु साथ ही यह निवेदन किया कि आप स्वामी जी को कष्ट न देते तो अच्छा होता है और यह कि आपने जो स्थाली पुलाक न्याय से एक असत्य होने पर समस्त लेख को असत्य समझने का उल्लेख किया यह आर्यों के निकट उचित नहीं। क्या रुपयों की थैली से एक रुपया खोटा निकलने पर सारी थैली के रुपये खोटे समझे जा सकते हैं। अतः सत्य को सत्य तथा असत्य को असत्य कहना चाहिये।

यह पत्र व्यवहार बहुत रोचक रहा। जहाँ गोपालराव जी की उदारता तथा योग्यता का परिचय मिलता है वहाँ स्वामीजी का भूल सुधार व भूल को स्वीकार करने की प्रबल भावना का प्रकाश होता है।

१५. आर्यसमाज से निष्कासित किये गये

मुंशी इन्द्रमणि मुरादाबादी मुसलमानों के आक्रमणों के उत्तर में पुस्तकें लिखते व प्रकाशिता करवाया करते थे। स्वामी जी के

१. नवीन वेदान्ती महात्मा का यह पत्र महात्मा मुंशीराम जी द्वारा सम्पादित ऋषि के नाम लिखे पत्रों वाले ग्रन्थ में छपा मिलता है। महर्षि दयानन्द के जीवन की अनेक घटनायें अत्यन्त शिक्षाप्रद व प्रेरणाप्रद हैं। मेरी दृष्टि में यह घटना और ऋषि के पत्र का यह वाक्य ऋषि के पावन चरित्र की सर्वश्रेष्ठ घटनाओं में से एक है। ऐसा सत्यनिष्ठ, असत्य से इतनी घृणा करने वाला ऐसा महापुरुष मिलना दुर्लभ न सही परन्तु अति कठिन तो अवश्य है। मानव मात्र के लिए यह घटना बहुत बड़ा उपदेश है। 'जिज्ञासु'

उपदेश से वह आर्य बन गए। यहाँ तक कि आर्यसमाज की स्थापना होने पर वह मुरादाबाद समाज के प्रधान बनाये गये। चाँदापुर के शास्त्रार्थ में स्वामी जी के साथ गये।[१] उन पर मुसलमानों ने अभियोग चला दिया। उनके अभियोग के समय उनकी सहायता करने के लिए स्वामी जी ने आर्य पब्लिक से अपील की। परिणाम स्वरूप धन आने लगा परन्तु स्वामी जी जन धन का उचित व नियमानुसार प्रयोग आवश्यक मानते थे। अतः इसके लिये एक समिति का गठन कर दिया गया। इसका कर्त्तव्य था कि रुपये के आय व्यय का ठीक–ठीक लेखा जोखा रखा जावे।

अभियोग का निर्णय हुआ तो मुंशी जी को जुर्माना किया गया। उसके लिये भी अपीलें की गईं और अन्ततः सारा अर्थदण्ड क्षमा हो गया। मनुष्य के भाव बदलते देर नहीं लगती। रुपया आते देखकर मुंशी जी चाहने लगे कि जब रुपये मेरे लिये व मेरा नाम लेकर प्राप्त किये जाते हैं तो औरों का इससे क्या सम्बन्ध? जो धन उनके पास सीधा आया बार–बार कहने व समझाने पर भी मुंशी जी ने उसका हिसाब न समिति को दिया और न ऋषिवर को दिखाया तथा अनुचित माँगें करने से भी संकोच नहीं किया। कमेटी ने इसका बुरा मनाया तथा स्वामी जी ने भी बार–बार समझाया परन्तु उन पर कुछ भी प्रभाव न हुआ। हाँ! उलटा चोर कोतवाल को डाँटे की उक्ति के अनुसार समिति व स्वामी जी के विरुद्ध दुष्प्रचार करने लगे व लिखने लगे।[२]

---

१. मुद्रण दोष से यहाँ कई शास्त्रार्थों में ऋषि के साथ गये छपा है। यह कातिब की चूक से हुआ है। किताबत सर्वथा दोषयुक्त है। 'जिज्ञासु'

२. प्रबुद्ध पाठक विस्तार से इस घटनाक्रम की जानकारी चाहें तो पं. लेखराम जी व श्रीमान् देवेन्द्र बाबू जी रचित ऋषि के जीवन चरित देखे। मुंशी इन्द्रमणि के पतन का तथा उनके अपयश का

क्रमशः

परन्तु सब स्थिति प्रकट की गई तो आपको बहुत लज्जित होना पड़ा। कमेटी की रिपोर्ट तथा हिसाब-किताब ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया। सब व्यय करने पर जो धन बचा उसका बहुत सा भाग दानियों को लौटा दिया गया।[१] क्योंकि मुंशी जी लोभ का शिकार हो चुके थे, उनका पापी पेट सीमा को लांघ चुका था अतः आर्यसमाज मुरादाबाद ने स्वामी जी की आज्ञा के अनुसार मुंशी जी को उनके चेले लाला जगन्नाथदास सहित आर्यसमाज से निष्कासित कर दिया तथा सब समाजों को सूचित कर दिया। क्योंकि समाजी लोग लोभी प्रवृत्ति तथा अनियमित कार्य के विरुद्ध थे तथा ऐसे पुरुषों के समाज के अधिकारी बनने तथा सभासद रहने से समाज के गौरव का नाश समझते थे अतः उनके समाज से निष्कासित होने की सूचना पाकर मुरादाबाद समाज के साहस की प्रशंसा की गई तथा स्वामी जी ने भी शिक्षा दी कि शक्ति शौर्य की ऐसे ही अवसर पर परीक्षा होती है। कोई बड़ा हो या छोटा उसके अनुचित व्यवहार पर यथायोग्य दण्ड दिया जावे।

१६. थियोसोफ़िकल सोसाइटी से सम्बंध विच्छेद

अमेरिका से कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लैवेटस्की ने अत्यन्त श्रद्धा व भक्ति भाव से पत्र भेजे। वेद को धर्म का मूल स्वीकार किया। स्वामी जी को अपना आध्यात्मिक गुरु लिखा। लम्बे-लम्बे पत्रों में **इच्छा प्रकट की कि हम आपके चरणों**

कारण उनका लोभ व हठ तो थे ही। उनका चेला ला० जगन्नाथ उनको डुबोने के लिए विशेष दोषी था। जब आगरा में ऋषि ने बुलवाकर उन्हें समझाया तथा उनके पास आये धन का सब ब्यौरा माँगा तो जगन्नाथ ने कहा, "ओहो! कागज़ मुरादाबाद भूल आया।" फिर ऋषि जी से कहा, "धन हमारे नाम पर आया। आप लोग कौन हैं हिसाब लेने वाले?" साथ ही कहा, "क्या आप वैदिक यन्त्रालय का हिसाब देंगे?" ऋषिवर ने कहा, "कोई कल देखना चाहे तो आज देख ले।" इस पर गुरु-चेले की बोलती बन्द हो गई। 'जिज्ञासु'

१. द्रष्टव्य महर्षि दयानन्द चरित लेखक देवेन्द्र बाबू जी।

में बैठकर शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। स्वामी जी उनको विस्तृत उत्तर देते रहे। बहुत चर्चा फैली कि इतनी दूर के लोग अपने आप कैसे खिंचे आ रहे हैं। थियोसोफ़िकल सोसाइटी तथा आर्यसमाज एक ही समझे गये। अन्तत: कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लैवेटस्की भारतवर्ष में आये। समाजों ने उनका भव्य स्वागत किया। स्वामी जी की उनसे कई बार भेंट हुई। बहुत जोश व उत्साह से कार्य होता रहा। परन्तु भारत के प्रेम व श्रद्धामय व्यवहार से उनके भी रंग ढंग बदल गये। वे जो शिष्य बनने यहाँ आय थे अब गुरुपन की दुर्गंधि मस्तिष्क में भरने लगी। प्रसिद्धि व प्रचार को पचा न सके। सन्मान व कीर्ति के प्रलोभन से बचकर अपने वास्तविक स्वरूप को ध्यान में रखना प्रत्येक मनुष्य के बस की बात नहीं। सच्चे तपस्वी ही हर्ष शोक पर विजय पाकर अपने मिशन में डट सकते हैं।

एक बार मेरठ में उनसे वार्तालाप करते हुए स्वामी जी को पता चला कि वे कुछ बातों में मतभेद रखते हैं। एक दो नियमों तथा ईश्वर विषय में विचार विमर्श होता रहा। स्वामी जी महाराज ने कहा, "आप भली प्रकार से सोच विचार कर निर्णय लेवें। उनके प्रश्नों के सन्तोजनक उत्तर दे दिये गये परन्तु ईश्वर के विषय में उन्होंने बार-बार कहे जाने पर भी बातचीत नहीं की। स्वामी जी ने अनेक बार इस बात पर बल दिया। वह यही कहते रहे, इसके लिये जल्दी क्या है? कभी बात कर लेंगे। अन्तत: मुम्बई में स्वामी जी ने भली प्रकार से स्पष्ट किया कि हमारे मध्य ईश्वर के विषय में मतैक्य होना आवश्यक है कि सन्देश भेजा कि यदि शीघ्र विचार करके मतभेद दूर न हो तो हमारी मित्रता नहीं टिकेगी क्योंकि **मैं नास्तिक मतों के खण्डन में प्रमाद करने को पाप मानता हूँ।**[१] उत्तर मिला कि कर्नल

१. महर्षि दयानन्द वेद व ईश्वर को सर्वोपरि मानते थे। सिद्धान्तों का सौदा वे नहीं कर सकते थे। **"Truth was dearer to him than name, fame and prestige." सत्य उनको नाम, यश व प्रतिष्ठा से कहीं अधिक प्यारा था। यह कथन उसी का प्रमाण है। 'जिज्ञासु'

महोदय बाहर चले गये हैं तथा मैडम जी के पास समय नहीं।

इस प्रकार निर्णय करने के लिये आते नहीं। हाँ! उनके लेख व वक्तव्य की रिपोर्ट दर्शाती थी कि वे समझते थे कि हम भारत को जिधर चाहेंगे, चला लेंगे। उन्हें यह भूल गया कि हमारे मान सन्मान का आधार केवल ऋषि का व्यक्तित्व है। अन्ततः स्वामी जी ने मैडम जी को पत्र लिखकर यह अन्तिम चेतावनी दे दी कि आप अथवा कर्नल महोदय अथवा आप दोनों तीन चार दिनों में अपने आश्वासन के अनुसार विचार नहीं करेंगे तो मैं २८ मार्च १८८२ को आपके विरुद्ध भाषण दे दूँगा। उत्तर न पाकर आपने उसी दिन व्याख्यान दिया तथा थियोसोफ़िकल सोसाइटी का पत्र व्यवहार सुनाकर यह स्पष्ट किया कि वास्तव में वे लोग आर्य नहीं हैं। उनसे हमारा सम्बन्ध आगे नहीं रह सकता। यही सूचना समाजों को दे दी गई तथा व्याख्यान जिसमें सब घटनाक्रम लिखा था प्रकाशित करवा दिया।

इसके पश्चात् थियोसोफ़िस्टों द्वारा विभिन्न नगरों में भ्रमजाल फैलाने वाली गतिविधियों का पता चला। कहीं मैसमरेज़म, कहीं भूत विद्या, कहीं बनावटी योग की चर्चा की तो पता चला कि स्वामी जी की स्थिति (Position) उनसे सम्बन्ध विच्छेद करने की सर्वथा उचित थी।

विरोध व सहयोग सैद्धान्तिक आधार पर होना चाहिये न कि व्यक्तिगत बातों के कारण। यथा स्वामी जी ने जब कर्नल आल्काट व मैडम ब्लैवेटस्की को वैदिक धर्म का सच्चा अनुयायी समझा तो उनका सोत्साह हार्दिक स्वागत किया। परन्तु इससे विपरीत आचरण का पता चला तो अविलम्ब सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। आपका समग्र व्यवहार ऐसा धर्मयुक्त था कि थियोसोफ़िस्ट वाले आपके व्यक्तित्व पर कोई आक्षेप न कर सके। आक्षेप तो क्या जब अधम विरोधियों ने इसका अनुचित लाभ उठाना चाहा तो कर्नल महोदय ने लिखा कि हम स्वामी जी के विरोधियों को सूचित करना चाहते हैं कि 'थियोसोफ़िस्ट' में कोई भी लेख जो बिना सोचे-समझे लिखा होगा, स्वामी जी तथा

आर्यसमाज के विरुद्ध नहीं छपेगा।[१]

हमारे तथा उनके मध्य मतभेद का होना, यह ऐसा कारण नहीं है कि हम अपने पत्र में व्यक्तिगत आक्षेप वाले लेख प्रकाशित करें। यद्यपि हमको इस बात का बड़ा दुःख है कि ऐसा महापुरुष किसी भ्रमवश हमसे ऊब जावे। परन्तु कोई भी व्यक्ति इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि वह आर्यन कल्चर का एक Loyal Champion (निष्ठावान् समर्थक-सेनानी) है तथा अपने देश का समर्पित सर्वस्व त्यागी शुभ चिन्तक। उसके लिए हमारे साथ सम्बन्धों की परवाह करना इतना आवश्यक व अनिवार्य नहीं है जितना कि भारत की भलाई–देशात्थान की।

१७. अपने घातक की भी जान बचा गये

श्री स्वामी जी महाराज पर अनेक बार प्राणघातक आक्रमण किये गये जिनमें विरोधी विफल रहे।[२] तथापि जोधपुर के

---

१. थियोसोफ़िकल के नेताओं की इस सोच, इस नीति व व्यवहार की प्रत्येक निष्पक्ष व्यक्ति प्रंशसा ही करेगा। महर्षि के बलिदान के पश्चात् जियालाल जैनी ने एक जाली जन्मपत्र बनाकर ऋषि की निन्दा में एक विषैली पुस्तक छापी। फिर नास्तिक देवसमाजियों के गुरु शिवनारायण ने कुछ लिखा। सब विरोधियों का गुपचुप एक गठबंधन था। इन लोगों ने थियोसोफ़िस्ट पत्र में अपनी विषैली सामग्री देनी चाही। उनको ऐसा कड़ा उत्तर देते हुए कर्नल महोदय ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। महर्षि की सिद्धान्त प्रियता व अपने देश के प्रति सर्वस्व त्याग की भावना की भूरि-भूरि प्रंशसा भी कर दी। इसके लिये हम कर्नल महोदय के प्रति आभार प्रकट करते हैं। 'जिज्ञासु'

२. महर्षि दयानन्द पर कितने प्राणघातक आक्रमण हुए इसका लेखा जोखा किसी ने किया ही नहीं। ईंटें-पत्थर तो वर्षाये ही गये। नदी में फेंका गया। कुटिया को आग लगाई गई। तलवार कटार के वार हुये। महर्षि के जीवनकाल में प्रकाशित 'रसाला एक आर्य' उर्दू पुस्तक में सन् १८८१ में छपा मिलता है कि एक बार उनकी टाँग भी तोड़ी गई। **'महर्षि का अलभ्य शास्त्रार्थ'** इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद में यह घटना दी गई है। 'जिज्ञासु'

षड्यन्त्रकारी जत्थों ने उन्हें विष दिलवाकर उनके अमूल्य शारीरिक जीवन को समाप्त[1] कर दिया। यह घटना सविस्तार अन्यत्र दी गई है परन्तु ऋषिवर के त्याग का उल्लेख करते हुये यहाँ इसके एक पक्ष पर प्रकाश डालना आवश्यक है। सत्य किस प्रकार से प्रकट होकर रहता है वह उस विषदाता व्यक्ति के अपने कथन से भली प्रकार से विदित होता है।

यह व्यक्ति था जगन्नाथ पाचक।[2] उसने मुम्बई के एक पण्डित जी से कहा था कि मैंने स्वामी जी को विष दिया था।[3] आह! मैं पापी हत्यारा देश-धर्म का शत्रु बना। यह कहकर वह बहुत रोया। उसने बताया कि विष दिये जाने पर शीघ्र ऋषिवर को पता चला गया कि जगन्नाथ ने विष दिया है।

परन्तु कहा केवल इतना ही कि मेरे इस समय निधन से मेरा कार्य सर्वथा अधूरा रह गया और फिर मुझे प्रेरणा की कि तू यहाँ से नेपाल आदि को चला जा ताकि अभियोग से बच जावे। मेरा तो जो होगा, देखा जायेगा। तू तो अपने प्राण बचा। मैंने कहा, "भाग कर कहाँ जाऊँ? पल्ले तो कुछ है नहीं, जो कर्म गति।

तब स्वामी जी ने मुझे कुछ रुपये दिये। मैं जोधपुर से भागा। पन्द्रह वर्ष नेपाल में रहा। फिर कई वर्ष नाम तथा वेश बदलकर भारतवर्ष में इधर उधर घूमा और ब्राह्मण भिक्षु बनकर निर्वाह करता रहा। हाय! अज्ञानता में क्या कर बैठा! अब पता चला है

---

१. सबसे बड़े ऋषि जीवन चरित के लेखक श्री पं. लक्ष्मण जी किसी एक को ऋषि का हत्यारा नहीं मानते। 'जत्थों' शब्द से पता चलता है कि इसमें अनेक पापियों का हाथ था। हमारा भी यही मत है। 'जिज्ञासु'

२. पाचक का नाम कुछ भी हो, यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं। विषदाता हत्यारा पाचक ही था। ऋषि अपने एक पत्र में शाहपुरा के नौकरों को निकम्मा, धूर्त बताते हैं। 'जिज्ञासु'

३. इस घटना पर विवाद करने का कोई लाभ नहीं कि हत्यारे ने मुम्बई में यह कहा, हरदुआगंज में यह कहा। यह किंववदन्तियाँ हैं उसकी जाँच महात्मा मुंशीराम सरीखा कोई योग्य नेता करता तो प्रामाणिक बात होती। 'जिज्ञासु'

कि मैंने कितनी हानि पहुँचाई है।"

शिक्षा

१. मनुष्य को अपने जीवन का मिशन निश्चित करना चाहिये। जगत् का उपकार इसका नाम रखें अथवा अपना सुधार। दोनों का अर्थ या अभिप्राय एक ही है। हमारी सच्ची उन्नति जगत् की उन्नति में है। वे विचार थोथे व कच्चे हैं जो स्वार्थ के भाव से निज जीवन का नाश कर रहे हैं।[१] वे जन जगत् का दुःख बढ़ाते हैं। यह सम्भव है कि मनुष्य अपनी व अपने सजातीय बंधुओं की उच्च उन्नति न कर सके। तथापि अपनी योग्यता व सामर्थ्य अनुसार कल्याण पथ की ओर ही पग बढ़ाना चाहिये। यही लक्ष्य बनाना आवश्यक है।

और अधिक योग्यता बढ़ा कर उन्नति के शिखर पर पहुंचा जा सकता है आत्मिक आध्यात्मिक मार्ग पर विशेष योग्यता व सद्गुण पैदा करके मनुष्यों का पथ प्रदर्शन हो सकता है।[२] रोगी व घायल हृदय के लिये कोई भी मरहम पट्टी व फाहे का काम कोई भी कर सकता है। किसी भी भँवर बीच फँसी नौका की पतवार बना जा सकता है। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं जो कुछ न कुछ उपकार का कार्य न कर सकता हो तथा भविष्य में महान्

१. आर्यसमाज ने साठ सत्तर वर्ष तक दिनरात पुरुषार्थ व परमार्थ का सोत्साह प्रचार किया। गली–गली आर्य लोग प्रभात फेरियों में यह गीत गाया करते थे–

खिदमते खल्क में जो कि मर जायेंगे।
नाम दुनिया में अपना वह कर जायेंगे।
यह न पूछो कि मरकर किधर जायेंगे।
वह जिधर भेज देगा उधर जायेंगे।।

एक गीत यह था–परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द, पधारा है परलोक डंके बजाता।

महर्षि के बलिदान, कर्मण्यता व निडरता ने आर्यों में आत्मोत्सर्ग व बलिदान तथा निर्भीकता की भावनायें भर दीं। 'जिज्ञासु'

२. यह वाक्य हमें मूल में अटपटा लगा। हमने इसे प्रसंग अनुसार बना दिया है। 'जिज्ञासु'

कार्य करने के योग्य न बन सकता हो।

हे मानव तो अहं से कार्य मत कर
तू स्वार्थी बन कर मत जीवन बिता।
औरों के लिये हे भोले जीवन भेंट कर दे,
तू संसार में जो आया है तो यह तेरा
एक मुख्य कर्त्तव्य है।
तू जीवन भर दूसरों के लिये जी,
सदा दूसरों का उपकार करने वाला,
सदा आनन्दित रहता है।
सुन! चाँद सूर्य, मेघ, वायु, पेड़ व नदियाँ,
सबके सब तुम्हें क्या कहते हैं,
यह कान धर कर सुन ले।
जीना उसी का जीना है जो नर,
औरों के लिये जीता है।
अपनी सुख सुविधा के लिये
जीने वाले का जीवन भी कोई जीवन है?[१]

२. जो पवित्र लक्ष्य अपने लिये मानव निश्चित करे उसमें सफलता का रहस्य यही है कि अपनी सर्व उत्तम शक्तियों को उस पर लगा दे। इस प्रकार यदि कुछ अयोग्यता भी हो तो वह आड़े नहीं आती दूर हो जाती है अन्यथा अधूरे कार्य कदापि सिरे नहीं चढ़ते। दुविधा में दोनों गये–

'माया मिली न राम'

की सूक्ति उस पर चरितार्थ होती है।

लकड़ी अपने आपको जलाकर रख देती है तभी तो प्रकाश व गर्मी दे सकती है। सोना तपाने व कूटने पर ही कुन्दन होता है। चन्दन में घिसाने से ही सुगंधि आती है। बीज भूमि में पड़कर गलकर ही उगता व फल देता है। आत्मा प्रकृति के सर्व

१. ये एक उर्दू कविता की पंक्तियों का भाव हमने दे दिया है। 'जिज्ञासु'

सम्बन्धों, यहाँ तक कि इन्द्रियों और संस्कारों से पृथक् होकर ही ईश्वर दर्शन का आनन्द लाभ उठा सकता है। इस लिये पवित्र मिशन पर धन, माल, सम्पदा व जान निछावर कर दे अन्यथा।

हम ख़ुदा ख़्वाही व हम दुनियाय दूँ
ईं ख़्याल अस्तो मुहाल अस्तो जनूँ।[१]

३. इन घटनाओं से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य के लिए सच्चा त्याग क्या है। लोग निन्दा करते हैं तो निर्बल मनुष्य सन्मार्ग को छोड़ देते हैं। यदि विचार आ जावे कि इस व्यक्ति के साथ चलने से या फिरने से अमुक व्यक्ति रुष्ट होगा अथवा अमुक हानि होगी तो झट से उससे सम्बंध तोड़ लेते हैं। भले ही वह कितना धर्मात्मा हो। थोड़े से प्रलोभन में बीच में ही छोड़ा जाता है। घूस लेकर अपनी प्रामाणिकता व पवित्रता पर धब्बा लगाया जा सकता है। किसी बड़े व्यक्ति के कहने पर सुरापान से इनकार नहीं हो सकता तथा मर्यादा का संयम का उल्लंघन किया जाता है। कहाँ इनकार करना है तथा कहाँ स्वीकार करना है इस पर आचरण करते हुए ध्यान देना है तो कठिन कार्य। यह निर्बल आत्माओं का काम नहीं है। एक बालक भी वीरता से प्रलोभनों का सामना कर सकता है। तनिक उस बालक का स्मरण कीजिये जिसकी चर्चा कई पुस्तकों में मिलती है। वह सेना में कार्यरत है। छोटा अधिकारी उसे मदिरा पीने के लिए कहता है। बड़ा अधिकारी धमकाता है। उसे धमकाया जाता है कि आज्ञा का उल्लंघन करना बिन आई मौत मरने जैसी बात है। वह किस दृढ़ता से उत्तर दिये जाता है कि नहीं मेरा प्रण। मैं इसे कदापि नहीं पिऊँगा। इस व्रतधारी के सामने अन्त में अधिकारी भी सिर झुकाते हैं तथा उसे प्यार व सत्कार मिलता है। वह

१. इस फ़ारसी पद्य का अर्थ यह है यदि तुम भगवान को भी चाहो और सांसारिक भोगों व पदार्थों से भी चिपकना चाहो तो यह विचार असम्भव है। एक उन्माद है। लेखक का भाव यह है कि त्याग भाव से भोगों को भोगो। यही वेदादेश है। 'जिज्ञासु'

उन्नति करता जाता है।

हकीकत ने कितना यश पाया। इसका यही कारण है कि उसे मृत्यु की धमकी दी जाती है। माता पिता व सगे सम्बन्धी भी प्रेरित करते हैं परन्तु वह यह कहता है कि मैं मुसलमान नहीं बनूँगा।

आह! इस न वहाँ का उचित अवसर पर प्रयोग करना आ जावे तो मानव इस पतित अवस्था से ऊपर उठकर कुछ के कुछ बन जावें।

ऋषि का जीवन बताता है कि यदि तुम्हें अपने पवित्र मिशन के लिये घर बार भी छोड़ना पड़े तो छोड़ दो। यदि तुम्हारा कर्त्तव्य तुमसे तुम्हारे शरीर की भी माँग करे तो इसका भी त्याग कर दो। यदि तुम्हारा प्यारा मित्र बंधु धर्मच्युत होता हो तो आप अविलम्ब उससे नाता तोड़ लो। भोजन में मांस आदि है तो भूखा रह लो। इसे विषैली चपाती सदृश त्याग दो। अपने गुणों व विद्यादि के लिए आलस्य व प्रमाद आदि से बचो। धर्म व ईश्वरीय आदेश के सन्मुख अपने निजत्व को तुच्छ जानो। चक्रवर्ती राज्य भी क्यों न मिले, आत्मिक आनन्द में विघ्न डालता हो तो सच्ची शूरवीरता से उस पर लात मार दो तथा सबसे बढ़कर जगत्-मैत्री व भ्रातृभाव में बाधा पड़ती दिखाई दे तो अहिंसा धर्म के उच्च आदर्श का पालन करते हुए अपने हत्यारे तक से भी बदले व प्रतिशोध का विचार तज दो।

मैं यह कहता हूँ कि तुम गर्दन न काटो और की
यह नहीं कहता कि तुम गर्दन कटाना छोड़ दो।

चौथा सर्ग

ब्रह्मचर्य

था कुल जगत् विरोधी–

ऋषि दयानन्द अकेला लंगोटी बाँधे, संन्यस्त होकर कार्य करने को निकला। न तो उसके संग कोई सहयोगी–साथी और न ही धन सम्पदा पास थी। न राज आश्रय था और न परिस्थितियाँ ही अनुकूल थीं। हाँ! सारा भारतवर्ष अपनी समस्त सम्पदा तथा वैभव के साथ, सब सुशिक्षित अपनी योग्यता के साथ, सब मत–मतान्तर अपने अनुयायिओं के साथ उसे विफल बनाने के लिए यत्नशील थे परन्तु ऋषि के मन में न भय है और न ही वह किञ्चत् मात्र डगमगाया प्रत्युत सब विरोधियों के हृदयों को सकल संसार को सफलता के साथ पलटा दिया गया।

ऐसा विरोध जो बड़े–बड़े योद्धाओं को कम्पायमान कर सकता है। सब ब्रह्मचर्य से प्राप्त की गई शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्ति के प्रताप से था। ऋषि ने ब्रह्मचर्य व्रत के पालन को अपनी जान से भी प्यारा जाना। अपने बाल्यकाल से ही लेकर मृत्यु पर्यन्त ही इस शिक्षा का दृढ़तापूर्वक आचरण किया। ऋषि कहाँ तक इस विषय में सतर्क थे और कहाँ तक उनके शरीर में बल था, ब्रह्मचर्य का मनुष्य जीवन से वे क्या सम्बन्ध मानते थे, इन प्रश्नों का उत्तर दो चार घटनायें अपने आप देंगी।

१. अपने पतियों को भेजो, उन्हें उपदेश देंगे

अजमेर में कुछ स्त्रियाँ वाटिका में दर्शन को आ गईं। ऋषिवर वहाँ ठहरे हुए थे। उनसे स्वामी जी ने कहा, "देवियो! कहाँ गईं थीं?" उत्तर मिला "राम स्नेही साधुओं के पास गई थीं।"

ऋषि जी ने पूछा, "हमारे पास आपके आने का क्या

प्रयोजन?"

उन्होंने कहा, "हम कुछ उपदेश सुनना चाहती हैं।"

महाराज ने कहा, "हम आपको उपदेश नहीं दे सकते। आप अपने पतियों को भेजो। उनको उपदेश देंगे।"[१]

२. हाथ वज्र सदृश हैं

राव कर्ण सिंह ने जब कर्णवास में स्वामी जी पर प्राणघातक आक्रमण किया तो ठाकुर लोग उसको दुत्कारने लगे। तब नन्दकिशोर नाम के एक ब्राह्मण राव कर्णसिंह के पक्ष में बोले, "महाराज! राव साहेब ऐसे मूर्ख नहीं कि ऐसा कार्य करें।" तब ऋषिवर बोले, "प्रतीत होता है कि कि तुम्हें कुछ द्रव्य देता है अतः झूठ बोल रहे हो।"

उसने बातें करते हुए हाथ आगे किया तो स्वामी जी ने उसे पकड़ लिया। वह पीछे यह कहा करता था, "स्वामी जी का हाथ ऐसा लगा था जैसे वज्र पड़ता है।"

एक बार स्वामी जी कहीं जा रहे थे। पगडण्डी पर चलते हुये एक बहुत बड़ा साण्ड सामने आ गया। साथी एक ओर हो गए परन्तु स्वामी जी तन तानकर सामने खड़े हो गये। चैनसुख आदि कहते रहे कि साण्ड आया है, साण्ड परन्तु उन्होंने कतई परवाह नहीं की। "क्या करेगा?" यह वहाँ डटे खड़े थे। साण्ड अपने आप मार्ग से हट कर चला गया। चैनसुख बोले, "स्वामी जी! यदि वह सींग मारता तो क्या होता?" ऋषि ने कहा, "मैं दोनों हाथों से उसके सींगों को पकड़ कर हटा देता।"

---

१. लेखक ने इसके थोड़ा आगे एक और ऐसी घटना दी है। वहाँ घटना का स्थान नहीं दिया गया। वह लाहौर की घटना है। महर्षि दयानन्द स्त्रियों को सदैव ऐसा ही उपेदश दिया करते थे। अपने सुकठोर ब्रह्मचर्य व्रत के कारण वे स्त्रियों को अपने से दूर-दूर ही रखते थे। अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिये ऋषि ने एक मर्यादा की स्थापना की है। 'जिज्ञासु'

३. माई भगवती से भेंट

मुम्बई में माई भगवती जी हरियाणा (जनपद होशियापुर) से अपने भाई चूनीलाल को साथ लेकर स्वामीजी के दर्शनार्थ आईं। सत्यार्थप्रकाश पढ़कर माई जी नवीन वेदान्त के विचार तजकर ऋषि से भेंट करने व शंका समाधान के लिए पहुँचीं तो माई जी का पत्र पाकर स्वामी जी ने अगले दिन बारह बजे का समय भेंट के लिये निश्चित किया।

उस समय ऋषि तम्बू में भीतर ही रहे और माई जी को तम्बू के बाहर ही बैठने की आज्ञा दी गई। तब माई जी ने महाराज से योग्य सेवा पूछी। स्वामी जी ने कहा, "मेरी सेवा यही है कि जितनी योग्यता है उससे अपनी बहिनों को जगाओ तथा उनमें विद्या का प्रसार करो" तदनुसार माई जी ने लौटकर अपने हरियाणा कस्बा में कन्या पाठशाला स्थापित करके आयु पर्यन्त जितना भी उनसे बन पाया सुदूर नगरों में भी जा-जा कर प्रचार किया।

४. तुम्हारी आयु दीर्घ नहीं लगती

लाहौर में कालेज के विद्यार्थी स्वामी जी से संस्कृत पढ़ने आते थे। उनमें शाहपुर का एक विद्यार्थी पण्डित गणपतराय लॉ कालेज का छात्र था। एक दिन स्वामी जी ने उससे पूछ लिया, "तुम्हारा विवाह तो नहीं हुआ?"

वह बोला, "महाराज! सगाई तो हो चुकी है।"

ऋषिवर बोले, "विवाह न करना!"

उसने पूछा, "महाराज! ऐसा क्यों?"

उत्तर दिया, "तुम्हारी आयु कुछ थोड़ी लगती है अर्थात् तीस वर्ष तक ही।"

पण्डित जी ने घर वालों को तो न बताया परन्तु मित्रों को यह बात बता दी कि मैं विवाह नहीं करूँगा। ससुराल वालों ने विवाह का आग्रह किया तो परिवार वालों ने उन्हें पत्र लिखकर बुलवाया। वह घर नहीं गये। पत्र का उत्तर तक न दिया। कुछ दिन के पश्चात् घर से तार आया कि तुम्हारा पिता बहुत रुग्ण

है। हमारा बेटा है तो घर पर आकर ही पानी पीना।

वह घर गये। जाना ही पड़ा। पिता कुछ अस्वस्थ थे परन्तु कोई विशेष कष्ट नहीं था। सब घर वालों ने विवाह के लिए दबाव डाला। इन्होंने भी सोचा पुत्र हो जावे तो मेरा नाम चलेगा अतः विवाह कर लिया। पढ़ाई छोड़ दी। इधर-उधर भ्रमण करने लगे। एक दिन उन्हें समझाया गया कि साधु-सन्तों की सब बातें सच्ची थोड़ी होती हैं। तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं कि मेरी आयु थोड़ी है। कुछ कार्य करो। बेकार रहना अच्छा नहीं है। आपने नायब तहसीलदारी के लिए प्रयास किया। लोघराँ व शुजाबाद में कार्यवाहक नायब तहसीलदार नियुक्त हो गये। कुछ ही समय के पश्चात् २८ (अठाईस) वर्ष की आयु में रुग्ण होकर चल बसे।

मृत्यु समय परिवार व सगे-सम्बंधियों को बताया कि मुझे स्वामी दयानन्द ने बताया था कि तुम्हारी आयु तीस वर्ष से थोड़ी है। इसी लिये मैं विवाह नहीं करवाता था। इसी कारण मैंने पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी।

५. ब्रह्मचर्य बल दिखा दिया

एक बार सरदार विक्रमसिंह ने निवेदन किया कि महाराज सुनते हैं ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है। स्वामी जी ने कहा, "यह सत्य है। ऐसा ही शास्त्रों में वर्णित है।" सरदार जी ने कहा, "शास्त्र में लिखे का प्रमाणित होना कठिन है। आप भी तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु आपमें ऐसा बल प्रतीत नहीं होता।" उस समय तो स्वामी जी मौन रहे परन्तु कुछ घण्टों के पश्चात् सरदार जी अपनी बग्घी पर सवार हुए।

स्वामी जी ने उसका पहिया पीछे से पकड़ लिया। घोड़ों ने पूरा बल लगा दिया परन्तु बग्घी नहीं सिरकी। सरदार जी ने पीछे मुड़कर देखा तो छोड़ दिया।

महर्षि ने हँसकर कहा, "यह ब्रह्मचर्य बल का प्रमाण मिल

गया?''

६. बल परीक्षण की खुली चुनौती

ऋषिवर गुजरांवाला पंजाब पधारे। वहाँ व्याख्यान में कहा, "सरदार हरिसिंह नलवा बड़ा शूरवीर हुआ है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वह २५-२६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा। मेरी आयु इस समय ५१ वर्ष की हुई है। मेरा भी ब्रह्मचर्यव्रत अखण्डित है। मैं दावा से कह सकता हूँ कि जिस व्यक्ति को अपनी शक्ति का भरोसा हो, मैं उसका हाथ पकड़ता हूँ। वह मुझसे छुड़ा लेवे अथवा मैं हाथ खड़ा करता हूँ कोई इसे नीचे करके दिखा दे। पाँच सौ की उपस्थिति में कई कश्मीरी पहलवान भी थे परन्तु किसी को चुनौती स्वीकार करने का साहस न हुआ।[१]

इसी प्रकार लाहौर में भी स्वामी जी ने श्रोताओं को शक्ति परीक्षण की चुनौती दी थी परन्तु किसी को आगे आने का साहस नहीं हुआ।

७. स्त्री दर्शन से बचते रहे

एक बार कुछ स्त्रियाँ आपके निकट से होकर निकल गईं। स्वामी जी ने अपनी पीठ फेर ली। एक सज्जन ने कहा, "आपने ऐसा क्यों किया? आप जैसे ऋषियों के मन में स्त्री दर्शन से क्या दुर्भाव आ सकता है?"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "वास्तव में ब्रह्मचारियों को बहुत सावधानी बर्तनी चाहिये। नयनों द्वारा रूप भीतर मन में घुस जाता है।"

८. सिसकतों को दलदल से जिसने निकाला

महाराज एक बार एक कच्ची सड़क पर से जा रहे थे। सड़क पर बहुत दलदल व कीचड़ था। आपने देखा गाड़ी व बैल

---

१. यह नगर सन्तप्रवर लक्ष्मण आर्योपदेशक के जन्म स्थान रामनगर के बहुत निकट था। इस घटना के प्रत्यक्ष दर्शी वर्षों तक इसकी चर्चा करते रहे। 'जिज्ञासु'

कीचड़ में धंसे फँसे हैं। गाड़ीवान बैलों पर जोर-जोर से कोड़े बरसा रहा था। बैल गाड़ी को किञ्चित् भी खींच न सके। दयावान दयालु दयानन्द यह दृश्य देखकर कीचड़ में घुस गये। बैलों को खोल दिया। गाड़ी को खींचकर पश्चिम दिशा में सूखे स्थान पर पहुँचा दिया। बाबू अमृतलाल आदि कुछ सज्जन बनारस जा रहे थे। यह दृश्य देखकर वे बहुत दंग रह गये। बोले, "यह कैसा बलधारी ब्रह्मचारी संन्यासी है।"

[**विशेष टिप्पणी–** प्राय: पाठक यही समझते हैं कि ऋषिवर को दीन दरिद्र गाड़ीवान पर दया आई। आचार्य चमूपति ने प्रश्न उठाया है, "दया दीन गाड़ीवान पर आई अथवा मूक बैलों पर?"

वे स्वयं ही उत्तर देते हैं थके टूटे दरिद्र कृषक गाड़ीवान से पूछिये, वह कहेगा कि मुझ दीन पर दयावान को दया आई और मूक बैलों के धड़कते दिलों से पूछिये, वे बोल सकते तो कहते कि करुणा सागर दयानन्द को हम मूक प्राणियों पर दया आई।

सिसकतों को दल दल से जिसने निकाला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।। 'जिज्ञासु']

९. सदाचार का आदर्श

एक बार चित्तौड़ में व्याख्यान देने के पश्चात् ऋषिवर कुछ सरदारों व तीन-चार पण्डितों के साथ भ्रमण को निकले। राजस्थान में ग्रामीण लोग वृक्ष के तले चबूतरा बाँधकर लकड़ी खड़ी कर देते हैं और उसे देवता की स्थापना कहते हैं। भ्रमण करते हुए ऋषि ऐसे एक स्थान के समीप से निकले। वहाँ चार-पाँच बच्चे खेल रहे थे। स्वामी जी महाराज एक पण्डित की बातों का उत्तर दे रहे थे। तथा प्रतिमा पूजन का खण्डन कर रहे थे। जब वे उस स्थान पर आये तो रुक गये और शीश झुका कर आगे चल पड़े। वह पण्डित यह देखकर मुस्करा दिया और बोला, "देखिये महाराज! आप कितनी भी युक्तियाँ क्यों न दें, देवता ने आपका सिर झुका दिया।" स्वामी जी फिर एकदम खड़े

हो गये। तथा अत्यन्त आवेश से ओजस्वी वाणी से उन बच्चों में खेल रही एक चार वर्षीय बाला की ओर अंगुली से संकेत करते हुए बोले, वह नारी जाति जिसने तुम्हें जन्म दिया।"

यह सुनते ही उस समूह में सन्नाटा छा गया। डेरे पर पहुँचने तक किसी ने फिर एक शब्द तक न कहा।

१०. बालक को ब्रह्मचर्य का उपदेश

मुम्बई में एक सेठ अपने दस-बारह वर्षीय पुत्र के साथ श्री महाराज के दर्शन करने आया। और वार्तालाप के अतिरिक्त श्री स्वामी जी ने बालक को उपदेश दिया, "प्रातः उठा करो, हाथ मुँह धोकर माता पिता को नमस्ते किया करो। पाठशाला जाते समय अपनी पुस्तक आप अपने हाथ में लो। सेवकों के हाथ में न दो। स्वयं पुरुषार्थी परिश्रमी बनो।"

इसी प्रकार उपदेश देते हुए कहा, "किसी स्त्री के मुख पर दृष्टि मत डाला करें, यदि स्त्री सामने से दिखाई पड़े तो दृष्टि फेर लो अन्यथा उसका रूप हृदय में घुसकर ऐसी भावना उत्पन्न कर देगी जिससे तुम्हें वीर्य सम्बन्धी रोग लग जावेंगे और तुम्हारी बहुत क्षति होगी। जीवन के आरम्भिक वर्षों में सबसे आवश्यक यदि कोई बात है तो यह ब्रह्मचर्य का पालन है।"

११. पहरे वाले बदल दिये गये

जोधपुर में जिस उद्यान में स्वामी जी उतरे थे उसकी सीढ़ियों के समीप दालान में एक मारवाड़ी पण्डित ठहरे हुए थे। एक बार बड़ी महारानी ने अपनी सेविकाओं के हाथ कुछ आम केले आदि उनके लिये भेजे। वे पूछते हुये वहाँ पहुँचीं। किसी ने उन्हें कहा, "वे बंगले के भतीर हैं।" भूलवश बताने वालों ने उन्हें ऋषि के पास भेज दिया। ऋषिवर भोजन करके लेटे ही थे। अकस्मात् करवट बदली तो उन्हें देखकर कुछ घबरा कर जोर से आवाज दी और उठ खड़े हुये।

साथ के कमरे में लेटे सेवक ने समझा कि कोई व्यक्ति स्वामी जी पर वार करने के लिये तलवार लेकर आया है। वह

नंग सिर दौड़ कर आया। ऋषि ने उसे कहा, "अरे! यह क्या अंधेर है कि हमारे सामने यहाँ स्त्रियाँ आ गईं। यह तुम्हारी व्यवस्था का दोष है। इन्हें अति शीघ्र भेज दें।" अतः उन्हें बाहर कर दिया गया। पण्डित जी का ठीक पता बतला दिया गया तथा स्वामी जी को बतला दिया गया कि ऐसा पहरे वालों की चूक से हुआ। इस पर पहरे वाले बदल दिये गये।

जो नये नियुक्त किये गये उन्हें ऋषिवर ने समझा दिया कि कोई महिला छोटी अथवा बड़ी इस बंगले में नहीं आनी चाहिये।

१२. बाल ब्रह्मचारी की दिग्विजय

महर्षि के साथ शास्त्रार्थ करने का साहस न करके मथुरा के कुछ बड़े-बड़े पण्डों ने सोचा कि कोई ऐसा उपाय किया जाये जिससे कि स्वामी दयानन्द पब्लिक की दृष्टि में गिर जाय। कुछ विचार-विमर्श करके एक वेश्या को अपनी योजना की पूर्ति का साधन बनाया गया। उसे कहा गया कि किसी भी रीति से स्वामी दयानन्द की अपकीर्ति करवा देगी तो जो माँगेगी वही देंगे। उसने पाँच सौ रुपये माँगे। तत्काल उसकी माँग स्वीकार कर ली गई। परन्तु उसने कहा कि मैं अग्रिम लूँगी और आभूषणों के रूप में लूँगी। उसकी यह शर्त भी मान ली गई।

वह स्त्री आभूषणों से सुसज्जित होकर प्रातः समय ऋषि के डेरा पर पहुँच गई। पण्डे भी बाहर उमड आय कि अभी शोर करने का-हुल्लड़ मचाने का अवसर प्राप्त होगा।

स्वामी जी अभी समाधिस्थ थे। उस स्त्री ने श्री महाराज के ब्रह्मचर्य व्रत की चर्चा सुन रखी थी। इसका विचार करके वहाँ से लौट आई। उसने पण्डों से स्पष्ट कह दिया कि मैं तो कुछ नहीं कर सकती। मुझे तो भय लगता है।

उन्होंने उपहास उड़ाते हुए उसको पुनः प्रोत्साहित करके डेरे के भीतर भेजा। महाराज की समाधि अभी नहीं खुली थी। उसके मन में न जाने क्या-क्या विचार आते रहे। कुछ ही समय बीता और वह अपने आभूषण उतारने लगी।

महाराज ने जब आँख खोली तो सामने बैठी उस स्त्री को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। कहा, "तुम यहाँ कैसे आ गईं?" उसने हाथ जोड़े और भूमि पर सिर धरकर रोने लगी और कहा, "महाराज! क्षमा कीजिये। मैं अभागिन पापन रुपये व आभूषणों के लिए अपना धर्म गँवाती रही। अब भी आभूषणों के प्रलोभन से पापन हत्यारी स्वार्थियों की बहकाई यहाँ आई थी परन्तु यहाँ मेरी मति बदल गई है। यह आभूषण आपके अर्पण है। मेरे पाप को क्षमा कीजिये।"

स्वामी जी ने कहा, "हमें आभूषण नहीं चाहिये। तू इन्हें ले जा। अपने काम में लगा ले। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि इस घड़ी जो सुमति तुझे आई है यही तेरी आयु पर्यन्त बनी रहे।"[१]

शिक्षाः– ब्रह्मचर्य के नियमों का पूरे यत्न से पालन करना आवश्यक है। समस्त शक्ति व उन्नति इसी पर निर्भर करती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि स्त्रियों तथा पुरुषों में परस्पर घृणा रहे प्रत्युत मुख्य उद्देश्य अर्थात् संतान-उत्पत्ति व्यभिचार तथा उसकी ओर प्रेरित करने वाले सकल व्यवहार से सावधान होकर रहें। जिन लोगों ने गृहस्थ का परित्याग कर दिया अथवा अभी गृहस्थ में प्रविष्ट नहीं हुए उनको अर्थात् संन्यासी व ब्रह्मचारी को सदा इन प्रलोभनों से बचना आवश्यक है। स्त्री-दर्शन, स्त्रियों के साथ अथवा स्त्रियों के बारे में बातें करना इनके लिये वर्जित है। इस लिये कि इनके हृदयों में किसी और दिशा में झुकाव न हो।

सन्तान को उत्पन्न करना व पालना गृहस्थ से ही सम्बन्धित

१. श्री पं. चमूपति जी की ऐतिहासिक रचना 'दयानन्द आनन्द सागर' की एतद्विषयक कुछ पंक्तियाँ देना रोचक व लाभप्रद रहेगा। आभूषणों की पोटली की ओर संकेत करते हुए ऋषि बोले–
कहा माई क्या लाई जोगी के डेरे।
वोह बोली कि बाबा! यह हैं पाप मेरे।।
है मुँह जिसकी इस्मत[१] से असियाँ[२] का काला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।। 'जिज्ञासु'
१. पवित्रता २. पाप

है। इसमें ही पुरुष व स्त्री को ब्रह्मचारी कहा जाता है। जब वे नियम अनुकूल संतान उत्पन्न करने तथा व्यभिचार के भाव आदि से बचते हैं।

अपनी पत्नी के अतिरिक्त समस्त स्त्री जाति में मातृशक्ति की अभिव्यक्ति के दर्शन करना सचमुच अत्युत्तम संस्कारों का प्रमाण है परन्तु माता, बहिन व पुत्री पर दृष्टि डालने का अभ्यस्त होने पर भी मनुष्य को सदैव सावधान रहना चाहिये। जब ऐसे अवसर आये तो आँखें नीचे कर लेनी चाहिये अथवा मुँह दूसरी ओर फेर लेना ही कर्त्तव्य होता है। बालविवाह तो सारे जन्म की दृढ़ता व उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। व्यभिचार तो बहुत बड़े-बड़े बलवानों का भी नाश कर देता है। न केवल यही कि खाने-पीने, वस्त्र पहनने, व्यायाम करने तथा सोने आदि में भी सावधान रहना आवश्यक है। गरिष्ठ भोजन तथा मिठाई आदि वीर्य की नलियों पर बोझ डालते हैं।

चाय तथा मादक पदार्थ वासनाओं का उत्तेजित करने वाले हैं। अतः सदैव सात्विक भोजन ही किया जावे। सब बातों में नियम पालन व संतुलन रखने का विचार ही मनुष्य को प्रत्येक दृष्टि से बलवान बना सकता है।

ऋषि दयानन्द का शारीरिक बल युवकों व वृद्धों सभी को पुकार-पुकार कर उपदेश दे रहा है कि देखना अमूल्य रत्न गँवाकर अपना अवमूल्यन न कर बैठना।

पाँचवाँ सर्ग

१. सत्यनिष्ठा

स्वामी जी सोरों गये तो लोगों ने स्वामी कैलाश पर्वत को बुलाया कि आपका यहाँ वराह का मंदिर है और दयानन्द यहाँ आता है। एक दिन वे सोरों गंगा–स्नान करने गये तथा गढ़िया आकर रात रुके। सायंकाल को सन्ध्या कर रहे थे। देखा तो एक संन्यासी खड़ा है। पूछा "कोस्ती?" उत्तर मिला, "दयानन्द! अहं दयानन्द: अस्ति– मैं दयानन्द हूँ।" इस पर कैलाश पर्वत जी ने उन्हें सत्कारपूर्वक बिठाया और कुशल क्षेम पूछा।

दयानन्द:–"आपसे कुछ सहयोग लेने आया हूँ।"

कैलाश पर्वत:–"कैसा सहयोग?"

दयानन्द:–"रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क माध्व इन चार मतों ने सत्यानाश कर रखा है। हम इनका खण्डन करना चाहते हैं।"

कैलाश पर्वत:–"नि:सन्देह इन्होंने बहुत कुछ वेद विरुद्ध कर रखा है। हम सब प्रकार से उपस्थित हैं। इनका खण्डन करना बहुत अच्छी बात है। परन्तु आप दो बातें हमारी मानें। एक तो मूर्ति का खण्डन न करें। इससे बहुत लाभ हैं। मन्दिर बनते हैं। इससे अज्ञानी लोग वहाँ पूजा करते हैं। सैकड़ों को आजीविका मिलती है। दूसरी बात यह है कि पुराणों का खण्डन न करें। यह न कहा करें कि सारे पुराण अथवा कोई भी पुराण व्यास ने नहीं बनाये।"

दयानन्द:– इन चारों मतों की मुख्य मान्यता तो मूर्ति पूजा ही है। इसी धोखे की टटी से यह संसार को लूट रहे हैं। अत: इसका खण्डन तो पहले होगा। मूर्तिपूजा का आधार है केवल पुराण इस लिये वे भी साथ ही उड़ेंगे। आप लोगों का कर्त्तव्य है कि सत्य

की रक्षा करो।

आपने घर बार छोड़ा। शास्त्र पढ़े। संन्यासी नाम रखाया परन्तु खेद है कि पाखण्ड व अज्ञान में फँसे हो तथा सुख से तकिया लगाया बैठे हो। इससे आपका क्या भला होगा? आप भी अज्ञान ही में रहोगे तथा संसार को भी रखोगे। मैं चाहता हूँ कि पाखण्ड को तज दो। जयपुर अधीश राजा रामसिंह आदि शिष्यों को सत्यधर्म पर लाओ। उनके द्वारा धर्म का सन्देश दूसरों तक पहुँचाओ जिससे तुम्हारा और सबका कल्याण हो।"

ऋषि की अन्तःवेदना

इस प्रकार स्वामी जी ने प्रबल प्रेरणा दी तथा वह उनको विनम्रता से मीठी-मीठी बातें सुनाकर रोकने का यत्न करते रहे। बड़ी आयु के कारण स्वामी जी कैलाश पर्वत जी का सन्मान करते थे परन्तु जब यह दुर्बलता पाई तो स्पष्ट कह दिया कि आप राजाओं में मान पाने को आत्मा के विरुद्ध चलते हो। आपको भारी पाप लगेगा। सिपाही राजकीय वेश में नियम भंग करे तो दुगना दण्ड पावे। इसी प्रकार आप संन्यासी बनकर भगवा पहने जो सत्य का प्रकाश नहीं करते, सब पछताओगे।

यह कहकर चलने को उठे। कैलाश पर्वत जी ने भोजन के लिये कहा।

ऋषिवर ने उत्तर में कहा, "मुझे तुम्हारे भोजन की इच्छा नहीं, न मैं इसके लिये आया हूँ। आप लोगों ने सत्य का प्रकाश फैलाने में मेरी सहायता नहीं की। ईश्वर मेरी सहायता करें।"

२. हम तो सत्य के पक्षपोषक हैं

हरिद्वार में गोसाईंयों का और विशुद्धानन्द जी का झगड़ा हो गया। गोसाईंयों ने विशुद्धानन्द जी पर अभियोग चला दिया तथा स्वामी जी महाराज के पास सहयोग लेने आये। स्वामी जी ने कहा, **"हम न तुम्हारे, न विशुद्धानन्द के। हम तो सत्य के पक्षपोषक हैं। जो वेद की मान्यतायें हैं वही मानते हैं।"**

३. हम तो सत्य ही कहेंगे

फर्रुखाबाद से जब श्रीगोपाल स्वामी जी का विरोध करने में

विफल होकर चला गया तो उसका साथी ज्वाला प्रसाद अपनी कुर्सी उठाकर स्वामी जी के स्थान पर गया। मदिरा के मद में था। कुर्सी रखकर स्वामी जी को गालियाँ देते हुए बहुत कुछ अनापशनाप कह डाला। उपस्थित जन समूह ने उसे ऐसे करने से रोका फिर कुछ लोगों ने उसकी अच्छी पिटाई कर दी तथा उसकी कुर्सी भी जला दी। स्वामी जी महाराज ने बहुत कहा कि यह तो पागल है, इसे क्यों पीटते हो। उसने कोतवाली में रिपोर्ट कर दी परन्तु कुछ न बना।

कुछ समय के पश्चात् ला. जगन्नाथ ने स्वामी जी से पूछा, "बात क्या हुई।" उन्होंने सब कुछ बतला दिया कि वह मदिरा पीकर आया था। बकवाद करता रहा। लोगों ने उसकी पिटाई कर दी, जूते मारे तथा उसकी कुर्सी जला दी। लाला जी ने कहा, ''वह न्यायालय में जाने वाला है। यदि आप बुलाये गये तो क्या कहेंगे?''

आपने उत्तर में कहा, "हम तो यही कहेंगे!"

लाला जी ने कहा, "इस प्रकार तो सम्भवतः उन्हें जुर्माना हो जाये।" स्वामी जी ने कहा, "भले ही जुर्माना हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।"

४. "हम आपकी बात कब तक मानें"

पटना में एक दिन छोटेलाल ने पूछा, "हम आपकी बात कब तक मानें?"

आपने कहा, "जब तक हमारी बुद्धि को सन्निपात आदि रोग न हो जायें, मानो और जब हमारी बुद्धि में कोई रोग हो जावे तब हमारे कथन को प्रमाण मत मानना।"

५. मैं तो इस अंधेर को नहीं देख सकता

वृन्दावन में स्वामी जी के गुरु भाई (साथ-साथ पढ़े) तथा उनकी पाठशाला के अध्यापक पं. उदयप्रकाश जी भी मूर्तिपूजा के प्रचारक थे। स्वामी जी के सत्योपदेश से उनकी प्रतिष्ठा घट रही थे। उन्होंने स्वामी जी से आग्रह किया कि प्रतिमा पूजन का खण्डन छोड़ दीजिये।

स्वामी जी ने अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया कि यदि मैं सच्चा हूँ तो मेरे साथ मिलकर मूर्तिपूजा का निषेध करो अन्यथा शास्त्रार्थ कर लो। मैं तो इस अंधेर को नहीं देख सकता जो गोसाईंयों आदि ने व मत-मतान्तरों के आचार्यों ने मचा रखा है।

६. मेरी आवाज़ तो कानों में पहुँची

एक बार काशी में कुछ व्यक्तियों ने स्वामी जी महाराज को मिठाई आदि भेंट की। स्वामी जी को आश्चर्य हुआ कि कहाँ ईंटें और कहाँ मिठाइयाँ! एक व्यक्ति ने कहा, "महाराज! आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं तो पण्डित लोग संस्कृत न जानने वालों को कह देते हैं कि स्वामी जी ने आज मूर्तिपूजा को बहुत अच्छे ढंग से सिद्ध किया इत्यादि।"

यह सुनते ही स्वामी जी ने कहा, "अच्छा! अब भाषा बोलूँगा। जब कुछ अभ्यास करके शुद्ध-अशुद्ध जैसा भी हो सका भाषा में भाषण दिया तो विरोधियों ने ईंटें व रोड़े फेंके तो आपने कहा, "अब चाहे कुछ भी करो, मैं प्रसन्न हूँ कि मेरी आवाज़ लोगों के कानों तक तो पहुँच रही है।"

७. इस मूर्ति व इस पत्थर में क्या भेद है?

पूना में स्वामी जी ने बड़े साहस से असत्य का खण्डन किया। प्रतिष्ठित व सुपठित लोग उनकी विद्वत्ता व सच्चाई से प्रभावित हुए परन्तु मन्दिरों के पुजारी व पौराणिक ब्राह्मण भी षड्यंत्र करते ही रहते थे। एक अवसर पर स्वामी जी ने एक मन्दिर में उन्हें इकट्ठे हुए पाया तो वहीं मन्दिर के सामने शिला पर खड़े होकर ऊँची आवाज़ से उन्हें पुकार-पुकार कर कहने लगे, "बताओ, इस मूर्ति में जो भीतर है तथा इस शिला में जिस पर मैं खड़ा हूँ, क्या भेद है?"

भय तो उन्हें था ही नहीं।

८. महाराजा को प्रसन्न करूँ अथवा ईश्वर को?

लाहौर में पण्डित मनफूल जी ने कहा कि मूर्तिपूजा का खण्डन न कीजिये। इससे नगर के लोग रुष्ट हैं। यदि आप

खण्डन छोड़ दें तो महाराजा जम्मू व कश्मीर बहुत प्रसन्न होंगे।

स्वामी जी ने भर्तृहरि का प्रसिद्ध श्लोक

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् संसार के लोग भले ही निन्दा करें या प्रशंसा करें, धन–सम्पदा प्राप्त हो अथवा चली जावे। मृत्यु अभी हो जावे अथवा एक युग तक जीना हो धीर पुरुष सत्य मार्ग से कभी भी पीछे नहीं हटते।

यह श्लोक सुनाकर कहा, "महाराज जम्मू–कश्मीर को प्रसन्न करूँ अथवा ईश्वर की आज्ञा का जो वेद में है–उसका पालन करूँ?"

९. मैं सत्य को कदापि नहीं छोड़ सकता

पं० बिहारीलाल ऐक्सटरा असिस्टैन्ट कमिश्नर ने कहा कि आपके सब विचार श्रेष्ठ व प्रत्येक दृष्टि से उत्तम हैं। यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो सब आपके अनुकूल हो जायें तथा आपकी आज्ञा का पालन करें। स्वामी जी बोले, ''मैं सत्य को छोड़ नहीं सकता।"

सरदार हरचरणदास जी एक सम्पन्न महानुभाव मिलने आये। स्थूल काय होने से वह भली प्रकार से चल भी नहीं सकते थे। स्वामी जी ने उनके सामने कहा, "यह हमारे देश के मुर्दादिली हैं। चल भी नहीं सकते। चलने की भी शक्ति नहीं रही। ऐसे लोग देश का क्या भला कर सकते हैं।"

हम किसी का पक्षपात नहीं करते

जालंधर में एक दिन राजा विक्रमसिंह (जिनकी कोठी में डेरा था) विराजमान थे। स्वामी जी ने कहा, "जो राजा होकर वेश्या रखता है।" वह...पतित है।

यह कहकर सरदार जी के दुराचरण पर भी खरी–खरी

टिप्पणी कर दी। इस पर सरदार जी ने कहा, "महाराज! आज तो आपने हम पर भी कृपा कटाक्ष कर दिया।"

बोले, "हम तो सबको सत्य ही कहते हैं। हितकारी बात कहेंगे। पक्षपात किसी का नहीं करेंगे। धर्म की बात कहने से नहीं टलेंगे।"

१०. बिना पक्षपात के जो सत्य हो सो कहेंगे

जालंधर में एक दिन काशी आदि तीर्थों व गंगा स्नान का खण्डन करते हुए आपने अमृतसर के बारे भी कुछ कहा। बोले, "हमने तो बहुत दूर से अमृतसर की बड़ी महिमा सुनी थी। वहाँ जाकर देखा कि सिख श्रद्धालु सरोवर दीपमाला को उसमें केशों को, सिर के बालों को भी जा डालते हैं।"[१]

इस कारण स्नान करने से मन सुकचाता है। कोई स्नान क्या करेगा।

११. धन सम्पदा की बहुलता

लाहौर में एक पादरी तथा एक अंग्रेज़ महिला स्वामी जी से मिलने आये। वार्तालाप करते हुए ऋषिवर ने कहा कि सम्पत्ति का एक सीमा से अधिक होना (अत्यधिक हो जाना) पतन का कारण है जैसा कि आर्य जाति का हुआ। अत्यधिक धन सम्पदा के कारण अंग्रेज़ों की भी आदतें बिगड़ती जाती हैं।

हमारा यह अनुभव है कि जिन दिनों हम वनों में रहा करते थे, हम बहुत से अंग्रेज़ों को प्रातः भ्रमण व स्वच्छ वायु सेवन करते देखते थे परन्तु आजकल अंग्रेज़ दिन निकलने पर उठते हैं।

१२. महाराज जम्मू का निमन्त्रण

"रावलपिण्डी में महाराज जम्मू का निमन्त्रण-पत्र प्राप्त हुआ परन्तु स्वामी जी ने कहा, हम वहाँ नहीं जा सकते वह मूर्तिपूजा का खण्डन सुनना नहीं चाहता। उसने सैकड़ों मन्दिर बनवा रखे हैं और हमने पहले इसका खण्डन करना ही है।"

---

१. कभी ऐसा होता होगा। अब तो सेवादार सरोवर में स्नान करने वालों को सरोवर की शुद्धता के लिए रोकते-टोकते रहते हैं। 'जिज्ञासु'

अतः बात कैसे बने? तभी एक राजा की कहानी सुनाई कि वह पन्द्रह सेर रुद्राक्ष अपने शरीर पर धारण करता था। वह पाँच सेर मिट्टी के गोले (शिवलिंग) बनाता था और ब्राह्मण उस पर जल छोड़ कर बहाता जाता था। हमने उसे जाकर कहा कि जब तक तुम हमारा उपदेश न सुनोगे हम तुम्हारा अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। तीन दिन हम वहाँ रुके तब उसके पण्डित से शास्त्रार्थ हुआ। वह कहता था कि यह रुद्राक्ष गौरीशंकर हैं। मैंने कहा, "नहीं, ये तो एक वृक्ष के बीज हैं।" उस समय राजा ने इनका परित्याग नहीं किया परन्तु पीछे एक बार भेंट हुई तो एक ही रुद्राक्ष धारण कर रखा था। वह धन्यवाद देने लगा कि आपने मेरी इतनी अविद्या दूर कर दी। अतः क्या कहें? ये राजा लोग विचित्र प्रकार के अंधविश्वासों में फँसे हुए हैं।

१३. केवल वैदिक धर्म को ही सत्य मानता हूँ

लाहौर में एक बार नवाब नवाज़िश अली खाँ साहब के बंगले पर डेरा हुआ। एक दिन आपने इस्लाम मत पर व्याख्यात दिया। नवाब साहब पास ही तो टहल रहे थे। व्याख्यान के पश्चात् एक व्यक्ति ने कहा, "महाराज! आपके ठहरने के लिए कोई मकान नहीं देता है। न हिन्दू, न ईसाई और न ही मुसलमान। नवाब साहब ने कृपा कर दी तो आप यहाँ भी खण्डन करते हैं। हमें तो आशङ्का है कि वह भी रुष्ट हो जावेंगे।"

श्री स्वामी जी महाराज ने कहा, "मैं इस्लाम का गुणगान करने के लिये यहाँ नहीं आया। और न ही किसी अन्य मत की प्रशंसा के लिये आया हूँ। मैं तो केवल वैदिक धर्म को सच्चा मानता हूँ। शेष सब मतों को मैं सत्य नहीं मानता। जिसे मैं सच्चा मानता हूँ उसी का उपदेश करता हूँ। मैंने देख लिया कि नवाब महोदय सुन रहे हैं। मैं जानबूझकर उन्हें सध्दर्म की विशषेतायें सुना रहा था। सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् नारायण के अतिरिक्त मुझे किसी मन्त्र का भय नहीं।"

१४. भूल अविलम्ब स्वीकार कर ली

मुरादाबाद में पं नारायणदास स्वामी जी से संस्कृत में वार्तालाप कर रहा था। अकस्मात् महाराज के मुख से एक शब्द अशुद्ध बोला गया। उसने उस अशुद्धि पर आपत्ति की तो स्वामी जी महाराज ने एकदम अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा, "हाँ अनजाने में यह भूल हो गई, मेरे मुँह से यह अशुद्ध शब्द निकल गया।" थोड़ी देर के पश्चात् साहू बृजरत्न जी आये तो उस पण्डित ने फिर कहा कि मूर्तिपूजा विषयक बातचीत में आपने संस्कृत में एक अशुद्ध शब्द बोल दिया और मैंने आपकी अशुद्धि पकड़ ली थी।

स्वामी जी ने कहा, "हाँ, यह ठीक है कि तुमने मेरी भूल जतलाई और मैंने स्वीकार भी कर ली।" इस पर उसने बड़ा अभिमान किया और बार-बार इसकी चर्चा की। तब स्वामी जी ने उसके इस व्यवहार पर आपत्ति करते हुए कहा, "अरे छोकरे! अब तेरा बार-बार यह रट लगाना तेरी हीनभावना ही तो है। मैं हठ पर उतर आऊँ तो अपने द्वारा कहे गये शब्द को भी ठीक सिद्ध कर सकता हूँ और तू उसका खण्डन न कर सकेगा परन्तु यह अधर्म है। अत: हमने अपनी चूक स्वीकार कर ली। अब तो कोई समुचित बात कर।"

१५. तुम सबका मत वेद है

मुरादाबाद के ही दो तीन पण्डित वादविवाद करने आय। श्री स्वामी जी का शरीर तब अतिसार के कारण दुर्बल था तथापि पण्डित लोग बात करते हुये डरते थे। स्वामीजी ने कहा, "भाई! घबरायें नहीं, जो पूछना हो सावधान होकर कहो।"

उन पण्डितों ने कहा, "महाराज! आपके सन्मुख हमारा सामर्थ्य ही क्या है? और यहाँ तो आपके सब शिष्य बैठे हैं। हमारी कौन मानेगा?"

स्वामी जी ने कहा, "आपको अधर्मयुक्त बात कहते हुए

लज्जा नहीं आती? देखो तुम्हारे सामने हमारा शिष्य जगन्नाथ[१] हमारी बात को कहने मात्र से नहीं मानता और कह रहा है जब तक आप सप्रमाण न बतलायेंगे कभी न मानूँगा। ये लोग हमारी हाँ मिलाने वाले नहीं हैं।"

इतने पर भी पण्डित लोगों को कोई बात करने का साहस ही न हुआ। तब स्वामी जी ने सबको कहा, "भाई! तुम सबका वेद मत है। यदि कहोगे कि हम दयानन्द स्वामी जी के मत में हैं तो कोई प्रश्न करेगा कि दयानन्द व उसके गुरु का क्या मत है? तब तुम उत्तर न दे पाओगे।"

१६. कूटनीति (पालिसी) धर्म विरुद्ध है

थियासोफ़िकल सोसाइटी वालों को जब स्वामी जी ने नई पोलिसी पर कार्य करते हुए समझा तो उनसे सम्बंध विच्छेद की घोषणा करने लगे परन्तु सामाजिक सदस्य चाहते थे कि आप नीति से कार्य लेवें। स्वामी जी ने कहा, "मैं अब तुम्हारी बात नहीं मानूँगा। पालिसी से कार्य करना धर्म विरुद्ध है। पहले जयपुर में कुछ महाशयों की प्रेरणा पर हमने वैष्णव के सामने शैवमत को अच्छा सिद्ध किया तो वहाँ सब मनुष्यों तथा राजगृह के हाथी घोड़ों तक को रुद्राक्ष पहनाय गए। अब तक पुराना कोई कोई व्यक्ति जब मिलता है तो रुद्राक्ष दिखाकर चिढ़ाता है कि यह वही है जिसके गुण आपने गाये थे। अतः धर्म विषय में अब तो हम कदापि पालिसी का हस्तक्षेप न होने देंगे। और शुद्ध सत्य ही कहेंगे।[२]

१. यही जगन्नाथ था जिसने मुंशी इन्द्रमणि को मार्ग भ्रष्ट किया और वह धन के लोभ में आकर आर्यसमाज व स्वामी जी का विरोधी बन गया। जब स्वल्पकाल के लिये समाज में था तब ऋषि का गुणगान करता रहा फिर आर्यसमाज व ऋषि दयानन्द जी के विरुद्ध ही विष वमन करने में जीवन गँवा दिया। यह मुंशीजी का चेला तो बना रहा। 'जिज्ञासु'

२. महर्षि दयानन्द जी को कबीर पंथी बन्धुओं ने चाँदापुर के मेले के

क्रमशः...

१७. कोई प्रलोभन प्रभावित न कर सका

उदयपुर के कविराज श्यामलदास जी[१] प्रायः स्वामी जी के सत्संग में रहते थे। वे कई बार श्री महाराज को कहा करते थे कि आपको राजनीति के अनुसार पालिसी से काम लेना चाहिये परन्तु आपने ये सुझाव स्वीकार नहीं किया। महाराणा ने भी कहा कि आप पाषाण पूजा का खण्डन न करें जन साधारण विरोधी बन जाते हैं। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि कुछ भी हो हम ऐसी बातों को नहीं मान सकते और न ही सत्य को छोड़ सकते, न छुपा सकते भले ही कोई कितना ही विरुद्ध हो।

१८. हमें आपके पाण्डित्य का पता नहीं था

एक बार श्री स्वामी जी महाराज रुग्ण होने के कारण पलंग पर लेटे थे। एक वैद्य जी जो चरक सुश्रत के विद्वान् थे शाहजहांपुर से आये और नीचे फर्श पर बैठ गये। जब वार्तालाप हुआ तो उन वैद्यराज जी ने ज्ञान की एक मार्मिक बात कही। यह सुनते ही श्री स्वामी जी महाराज रुग्ण होते हुए भी एकदम पलंग से उठे और साथ के कमरे से स्वयं कुर्सी उठाकर ले आये तथा

क्रमश...

अवसर पर ईसाई व मुसलमान प्रतिनिधियों से शास्त्रार्थ करने की विनती करके बुलाया। १९ मार्च सन् १८७७ को कुछ लोग स्वामी जी के डेरे पर आये और यह प्रस्ताव रखा कि हिन्दू तथा मुसलमान मिलकर ईसाइयों का खण्डन करें परन्तु स्वामी जी ने संयुक्त मोर्चा बनाने का यह सुझाव अस्वीकार करते हुए कहा कि हम, मौलवी और पादरी लोग सब मिलकर सत्य का निर्णय करें। किसी का पक्षपात अथवा विरोध न करें। सत्य उन्हें सर्वोपरि था।

१. कविराज श्यामलदास (सांवलदास) को महर्षि का शिष्य होने पर बड़ा गौरव था। वे एक जाने माने इतिहासकार तथा विद्वान् थे 'वीर विनोद' नाम से उनका लिखी इतिहास ग्रन्थ माला कुछ वर्ष पूर्व ही छपी है। आप प्रथम आर्य विद्वान् थे जिन्हें सरकार ने महामहोपाध्याय की उपाधि से सन्मानित किया। दूसरे थे पं. आर्यमुनि जी। कविराज जी परोपकारिणी सभा के सदस्य थे। 'जिज्ञासु'

आदर–सत्कार से श्री वैद्य जी से कहा, "आप यहाँ पधारिये। हमें तो पता ही नहीं था कि आप ऐसे गुणी विद्वान् हैं।"

१९. गो हत्या में लाभ है अथवा गो रक्षा में

अजमेर में स्वामी जी को गवर्नर जनरल के एजन्ट कर्नल ब्रुक मिले। श्री स्वामी जी ला० वंशीलाल के उद्यान में विराजमान थे कि कर्नल महोदय वहाँ आ गये। आप काषाय वस्त्र से बहुत चिढ़ते थे। एक ब्राह्मण[१] ने श्री महाराज से कहा, "कुर्सी इधर कर लें, यह साहब साधुओं से बहुत क्रुद्ध होते हैं।"

स्वामी जी ने उत्तर में कहा, "होने दो।"

वह महोदय देखते देखते आये और स्वामी जी के पास भीतर घुस आये। वह ब्राह्मण बोला, "देखा! महाराज मैंने पहले ही कहा था।"

स्वामी जी ने कहा, "कोई परवाह नहीं। आने दो।" तथा स्वयं कुर्सी से उठकर टहलने लग गये। साहब जब आये तो टोपी उतारकर हाथ में ले स्वामी जी से हाथ मिलाकर कुर्सी पर बैठ गये तथा बातें करते रहे।

स्वामी जी ने कहा, "आप धर्म का स्थापन करते हो अथवा खण्डन?"

कर्नल ब्रुकः– "हमारे यहाँ भी धर्म का स्थापन करना अच्छा है परन्तु जिसमें लाभ है, वह करते हैं।"

स्वामी जी– आप लाभ की नहीं प्रत्युत हानि की बात करते हैं।

स्वामी जी ने एक गऊ द्वारा सहस्रों मनुष्यों के पालन का सब गणित जैसा कि गोकरुणानिधि में लिखा है, सुनाया। फिर पूछा, "कहिये इस गोवध के करने से आपको लाभ है अथवा हानि?

---

१. इनका नाम वृद्धिचन्द्र था। यह ऋषिवर से अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ते थे। 'जिज्ञासु'

कर्नल ब्रुक:- होती तो हानि है।

स्वामीजी:- फिर आप गो-वध क्यों करते हैं?

कर्नल ब्रुक:- यह बात आपकी हमें स्वीकार है, कल आप हमारे बंगले पर पधारें, हम वहाँ बात करेंगे।

अगले दिन पौन घण्टा तक बंगले पर गो-रक्षा विषय पर वार्तालाप हुआ। कर्नल ब्रुक ने गो-रक्षा विषयक स्वामी जी के दृष्टिकोण कोस्वीकार किया परन्तु कहा कि इसका बन्द करवाना मेरे अधिकार में नहीं है। आप लाट साहब से मिलें। वह बन्द करा सकते हैं। निःसन्देह यह लाभ की बात है। कर्नल ब्रुक ने स्वामी जी महाराज को लाट साहब के नाम एक पत्र लिखकर दिया।[१]

२०. इण्डिया कौंसल में गो-रक्षा के लिये यत्न करिये

फ़र्रुखाबाद में उपकार के विचार से शिक्षा विभाग के निर्देशक तथा लाट साहब से मिले[२] तथा लाट साहब को कहा कि आप यहाँ से इंग्लैण्ड जाकर इण्डिया कौंसल में भरती होंगे इस लिये अच्छा तो यह है कि भारत की भलाई के लिये गो-रक्षा के विषय में आप कुछ कीजियेगा। उन्होंने वचन दिया कि जो कुछ बन सकेगा करूँगा।

२१. अंग्रेज को गो रक्षक बना दिया

दानापुर में पादरी जोन्स[३] महोदय स्वामी जी से मिले। स्वामी जी ने पूछा, "किस विचार को पुण्य कहते हैं?"

जोन्स साहब ने कहा, "आप ही कहिये।"

स्वामी जी- हम पुण्य उसे कहते हैं जिससे बहुतों का उपकार हो। साहब ने इस विचार को स्वीकार किया।

---

१. यह ऐतिहासिक भेंट जून १८६६ में हुई थी। 'जिज्ञासु'
२. यह घटना सन् १८७३ की है। लाट साहब का नाम म्यूर था। 'जिज्ञासु'
३. यह घटना १८७९ की है। इन्हीं जोन्स महोदय के बंगले पर आपके ठहरने की व्यवस्था थी। 'जिज्ञासु'

स्वामी जी:– "गाय से अधिक उपकार होता है अथवा उसके मांस से? दोनों बातों का अन्तर इस प्रकार से है कि गाय के दूध तथा उसके बछड़े बछड़ियों के दूध देने व कृषि करने से लाखों लोगों का भला होता है तथा मांस केवल कुछ ही मनुष्यों के प्रयोग में आता है। सब गणित बताकर पूछा, "अब कहिये गाय को बचाना अच्छा है अथवा मारना।"

जोन्स साहब– इससे तो बचाना ही धर्म सिद्ध होता है।

स्वामी जी– जो सिद्ध हो उसी पर चलना चाहिये अथवा नहीं?

जोन्स साहब– हाँ! चलना चाहिये।

स्वामीजी– तो फिर आप गो–मांस भक्षण छोड़ दीजिये।

जोन्स साहब– मैं भविष्य में गो मांस न खाने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

२२. गो–रक्षा विषयक एक योजना

मुम्बई में स्वामी जी ने गो–रक्षा के लिये एक विशेष योजना प्रचारित की। सब प्रतिष्ठित महानुभावों की एक बैठक बुलाई। उसमें गो–रक्षा विषय पर ऐसा व्याख्यान दिया कि श्रोता वाह! वाह! करने लगे। कहा जाता है कि गो–रक्षा आन्दोलन की नींव मुम्बई में दिये गये इसी व्याख्यान से पड़ी। आपने गो–रक्षा के लिए एक बहुत प्रभावशाली अपील निकाली। विज्ञापन छपवाय गये। इसमें लिखा था कि गो–रक्षा के सब समर्थक इस फार्म पर जो मैं भेजता हूँ हस्ताक्षर करके लौटायें। मुखिया लोगों के हस्ताक्षर करायें। वे यह लिखें कि हम अपने ग्राम अथवा बरादरी के इतने सौ अथवा इतने सहस्र पुरुषों की ओर से हस्ताक्षर करते हैं। जिनकी ओर से जो हस्ताक्षर करें, उन सबके हस्ताक्षर कराके अपने पास रखें। इस प्रकार स्वामी जी चाहते थे कि दो करोड़ लोगों के हस्ताक्षर करवाकर इस माँग को इंगलैण्ड की संसद तक पहुँचावें।

इस विषय में सब राजों–महाराजों तथा देश के सेठ साहूकारों

से बहुत पत्र व्यवहार हुए तथा देश भर से सहस्रों व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवा लिये गये।

२३. भैंसों की वकालत

उदयपुर में नवदुर्गा (विजयादशमी) के दिनों में भैंसे बहुत मारे जाते थे। इस पर स्वामी जी ने दरबार उदयपुर से एक बहुत युक्तियुक्त शास्त्रार्थ किया। कहा कि भैंसों ने हमको इस अभियोग में अपना वकील नियत किया है। आप राजा हैं। हम आपके दरबार में अपना अभियोग लाये हैं। प्राचीन प्रथाओं के सब गुण-दोष दिखाकर स्वामी जी महाराज ने कहा कि इनके वध से पाप के अतिरिक्त कुछ भी लाभ नहीं है। यह अत्यन्त क्रूर कर्म है- घोर अत्याचार है। तत्पश्चात् दरबार को इस पापकर्म से रोका। राणा जी ने स्वीकार किया परन्तु यह कहा कि यह धीरे-धीरे बन्द हो सकेगा। तब स्वामी जी ने उनसे सूची बनवाई तथा शनैः-शनैः इस कुरीति के बन्द करने पर बल दिया। महाराणा जी ने ऋषिवर की सन्तुष्टि करवा दी।[१]

१. यह घटना सन् १८८२ के दशहरा के दिनों की है। 'जिज्ञासु'

छठा सर्ग

निर्भयता

१. भागवत सप्ताह का खण्डन

२४ जनवरी सन् १८६५ को स्वामी जी महाराज ग्वालियर पधारे। यहाँ महाराजा जियाजीराव सिंधिया ने भागवत सप्ताह की तैयारी कर रखी थी। कथा का मुहूर्त राज्य की सर्व सरदार मण्डली के सामने निकाला गया। योग्य ज्योतिषियों ने सब मीन मेख विचार कर चार फरवरी का मुहूर्त उत्तम बताया। देश देशान्तर के सुयोग्य पण्डितों को तारें देकर सूचित किया गया।

काशी, पूना, सतारा आदि से चार सौ भागवती पण्डित इकट्ठे हुए। बड़ी धूमधाम से उनका सत्कार स्वागत किया गया। तीन मण्डप बड़ी सुन्दर रीति से सजाये गये। कथा करने वालों के स्वागत के लिए स्वयं महाराजा जियाजी गये। उन्हें अपने साथ रथ में बिठाकर लाये। पण्डितों को नित्यप्रति मूल्यवान् उपहार मिलते रहे यथा स्वर्ण मुद्रायें दक्षिणा के रूप में दी जाती रहीं। छड़ी, पालकी व बग्घी भी भेंट स्वरूप प्राप्त होती रहीं।

जब स्वामी जी के आने का समाचार मिला तो पण्डित लोग भी दर्शनार्थ जाने लगे। ऋषि जी के मुख से धारा प्रवाह संस्कृत सुनकर पण्डित उनकी महिमा गाने लगे। भागवत सप्ताह की चर्चा सुनकर स्वामी जी के मन में विचित्र सा जोश पैदा हुआ। आपने इसका प्रबल खण्डन आरम्भ कर दिया। आपने गंगाप्रसाद दफादार आदि पुरुषों को बड़े-बड़े खट शास्त्रियों के पास भेजा कि वे हमें दर्शन दें तथा विचार करें अथवा हमें अपने पास बुलावें। ये सब लोग बापू शास्त्री के पास गये तथा उसे अपने साथ गाड़ी में लेकर महाराज के पास गये और कहा कि एक पूर्ण ब्रह्मचारी स्वामी भागवत का खण्डन करते हैं। वहीं राज्य की ओर से विष्णु दीक्षित जी पण्डित स्वामी जी महाराज के

पास पहुँचे तथा प्रणाम करके कहा कि महाराज ने मुझे भेजा है कि आपसे भागवत सप्ताह का महात्मय पूछूँ।

श्री स्वामी जी महाराज ने हँसकर कहा, "दुःख व क्लेश के अतिरिक्त इसका कुछ भी फल नहीं, चाहे करके देख लो।"

महाराज यह उत्तर सुनकर मुस्करा दिये और कहा, "आप बड़े समर्थ हैं चाहें सो कहें परन्तु अब तो सब तैयारी हो चुकी है। पण्डित लोग पधार चुके हैं अतः अब तो बन्द नहीं कर सकते।" गोविन्द बाबाजी ने कहा, "ऐसे महात्मा का सम्मिलित होना आवश्यक है।" परन्तु जब सरकार से निमन्त्रण पहुँचा तो आपने कहा कि गायत्री का पुरश्चरण होना चाहिये परन्तु कथा को अब कौन रोकता? यह धूमधाम से होती रही तथा स्वामी जी भी निर्भयता से खण्डन करते रहे।

कथा का दृश्य बड़ा विचित्र होता था। बड़े-बड़े पण्डित कथा वाञ्चते तथा सहस्रों रुपये दक्षिणा में पाते। गोविन्द बाबा को दो लाख मिले परन्तु प्रतिदिन कोई न कोई विघ्न पड़ता ही रहा। प्रथम दिवस महारानी का पाँच मास का गर्भपात हो गया। अगले दिन रावजी शास्त्री के घर में मौत हो गई। तीसरे दिन कोठी मण्डप के सामने किसी ने साण्ड को घायल कर दिया तथा स्वयं भाग गया।

कथा के कुछ ही दिन पश्चात् कोतवाल ने रिपोर्ट की नगर में बहुत गर्मी है तथा लोग बहुत व्याकुल परेशान हैं। चार दिन के पश्चात् नगर में विषूचिका रोग फैल गया। नगर में सब ओर विनाश हुआ तथा शोक व्याप्त हो गया। तीन अप्रैल को कुँवर साहब की विशूचिका से मृत्यु हो गई। सप्ताह की समाप्ति पर इन कुँवर जी को सब ब्राह्मणों के चरणों में डाला गया था। गोविन्द बाबा ने उसे गोद में लिया तथा सबने उसे सौ वर्ष तक जीने का आशीर्वाद दिया था। कुँवर जी के निमित्त बहुत दान पुण्य किया गया।

२. मत समझो कि मैं अकेला हूँ

किशनगढ़ के राजा वल्लभ कुल के सेवक तथा स्वामी जी

वल्लभ कुल के प्रसिद्ध विरोधी थे। खण्डन किया तो लोग लगे योजनायें बनाने अन्तत: ठाकुर गोपालसिंह जी तीस–चालीस व्यक्तियों व सात–आठ पण्डितों को लेकर पहुँचे। स्वामी जी शौच आदि से निवृत्त होकर आये और पूछा, "आप लोग कैसे आये। एक पण्डित ने किसी पुस्तक के पत्रे दिखाये।

स्वामीजी– पढ़िये! हम उत्तर देंगे।

पण्डित ने पढ़ा। भाव यह था कि हमारा मत सनातन है। हम सीधे मार्ग पर हैं तथा हमारा भोजन ठीक है। स्वामी जी ने उत्तर दिया तो लगे हल्ला करने। यह देखकर स्वामी जी तख्त पर खड़े हो गये और गर्जकर बोले, "मत समझो कि मैं अकेला हूँ। अकेला होने पर भी मैं तुम्हारे लिये पर्याप्त हूँ। तुमको शास्त्रार्थ करना ही तो भी तैयार हूँ। शस्त्रार्थ से भी पीछे नहीं।"

इतने में तीस–चालीस व्यक्ति स्वामी जी की सहायता के लिए पहुँच गये। ये लोग सब खिसक गये।[१]

३. मगरमच्छ से निर्भय

एक दिन श्री स्वामी जी गंगा में स्नान कर रहे थे। आधा तन जल से बाहर था उनसे थोड़ी ही दूर जल में एक बड़ा मगर निकल आया आपके एक साथी ने शोर मचाया और भागा कि एक बहुत बड़ा मगरमच्छ निकला है परन्तु स्वामी जी जिस स्थिति में थे, उसी में ही पड़े रहे। उनके मुखमण्डल पर तनिक भी भय आदि के चिह्न नहीं थे। आपने कहा, "जब हम उसका कुछ नहीं बिगाड़ते तो वह भी हमें कुछ नहीं कहेगा।"

४. क्या भ्रष्टाचार कर रखा है

कानपुर के दुर्गाप्रसाद ने मेम रखी थी। स्वामी जी महाराज ने उसे व्यभिचार से बचने का उपदेश दिया तथा निडरतापूर्वक कहा, "तूने यह क्या भ्रष्टाचार कर रखा है?"

---

१. यह घटना सन् १८६६ की हैं। ऐसी किसी भी विकट स्थिति में श्री महाराज ने स्वयं को कभी भी अकेला नहीं समझा। वे कहा करते थे, "मैं अकेला क्यों? मेरे साथ सर्वव्यापक प्रभु तथा उसका सद्ज्ञान वेद हैं।" 'जिज्ञासु'

५. तुम लोग हमें बदमाशी दिखलाते हो

मिर्ज़ापुर में पहले तो छोटूगिरि आदि ने दंगा विवाद किया। स्वामी जी की जंघा पर जंघा रखकर छोटूगिरि बैठ गया। बोला, "बच्चा! अभी तू कुछ पढ़ा नहीं है, शिवलिंग के बारे कुछ असभ्य भाषा का प्रयोग करते हुए जो मुँह में आया सो कहता गया।" स्वामी जी की विद्वत्तापूर्ण तथा सभ्य वार्तालाप सुनकर उसके सब साथी तो सन्मार्ग पर आ गये। उसे भी उन्होंने भला मानस बनने को कहा परन्तु पीछे जब बहुत भीड़भाड़ हो गई तथा पण्डित लोगों से शास्त्रार्थ हुआ तो एक व्यक्ति ने ताली बजाकर पण्डितों को चलने का संकेत किया। स्वामी जी समझे कि हँसी के लिए ताली बजाई गई है।

ऋषिवर ने हुँकार ललकार करते हुए कहा, "किसने ताली बजाई है? सावधान! यदि ऐसा करोगे तो मैं अकेले ही आप सबसे निपट सकता हूँ। तुम हमें उद्दण्डता सिखाते हो। द्वार बन्द कर दो। लोग बाहर न जाने पावें।" रामप्रसाद भयभीत होकर काँपते हुए कर जोड़कर बोला, "महाराज मैंने चलने का संकेत किया है। हँसी करने के लिए ताली नहीं बजाई।" इस पर श्री महाराज शान्त हो गये।[१]

६. क्या यह प्रसिद्ध सुधारक दयानन्द हैं?

स्वामी जी महाराज पटना से मुंगेर जाते हुए मार्ग में जमालपुर जंकशन पर अपने सहज स्वभाव से कौपीन पहने हुये टहलने लगे। वहाँ प्रथम श्रेणी के प्रतीक्षालय में एक अंग्रेज़ अभियन्ता अपनी मेम सहित ठहरा हुआ था। मेम महोदया एक असभ्य साधु के घूमने पर रुष्ट हुई।

स्टेशन मास्टर को बुलाकर अंग्रेज़ साहब ने कहा, "इस साधु

---

१. छोटूगिरि गोसाई बड़ा हृष्टपुष्ट, बलवान व दंगई प्रवृत्ति का व्यक्ति था। यह घटना सन् १८७० की है। महाशय खुशहालचन्द 'खुरसन्द' (आनन्द स्वामी जी महाराज) ने ऋषि की इस निर्भीकता पर कभी एक कविता में लिखा था–

खुरसन्द जो ईश्वर के लिये जान लड़ा दे
जुज़ स्वामी दयानन्द कोई और नहीं है

को सामने से दूर कर दो। स्टेशन मास्टर स्वामी जी का भक्त था। डरता-डरता आया तथा ऐसे विनती की, "महाराज! गाड़ी के आने में अभी विलम्ब है। इधर पधारिये और कुर्सी पर विराजिये।"

ऋषिवर उसका भाव समझ गये।[१] ऋषि बोले, "सम्भवतः गोरे साहब ने भेजा है कि इस असभ्य साधु को हटा दो। जाओ, साहब तथा मेम से कह दो कि हम उस युग के व्यक्ति हैं **जब बाबा आदम तथा माई हौआ अदन के उद्यान में नंगे घूमा करते थे और वे लज्जा अनुभव नहीं करते थे।"**

यह कहकर स्वामी जी तो पूर्ववत् प्लेटफार्म पर विचरणे लगे तथा स्टेशन मास्टर विचित्र असमंजस में पड़ गया। **'न राहे रफ्तन न पाय माँदन'**

अर्थात् न जाने का मार्ग और न ही पग टिकाने को स्थान।

अन्ततः गोरे साहब ने फिर बुलाकर पूछा, "साधु हटा नहीं? क्या कहता है?" पहले तो "बाबू सुकचाया परन्तु फिर महाराज का उत्तर सुनाया। कहा, "श्रीमन्! यह अपनी मौज मस्ती के महात्मा हैं। ये किसी की बात नहीं सुनते। मस्त साधु जो हुए। अब साहब ने साधु का नाम पूछ लिया।

'स्वामी दयानन्द सरस्वती' यह नाम सुनते ही अनायास ही उठ खड़ा हुआ। बोला, "क्या यह प्रसिद्ध सुधारक Dayananda the Great (दयानन्द महान्) है?"

स्टेशन मास्टर ने कहा, "हाँ! श्रीमन् ये वही हैं।"

साहब टोपी उतारकर अविलम्ब स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुआ तथा आदरपूर्वक अभिवादन करते हुए बोला, "मैं तो चिरकाल से दर्शनों का भूखा-प्यासा था। आज परमेश्वर ने आपके दर्शन करवा दिये। आध घण्टे तक वार्तालाप करके श्री महाराज को गाड़ी में बिठाकर साहब विदा हुए।[२]

---

१. ठीक ही तो कहा गया है कि महर्षि दयानन्द अंग्रेज़ी तो नहीं जानते थे परन्तु अंग्रेज़ को खूब जानते थे। 'जिज्ञासु'

२. यह घटना ४ अक्टूबर १८७२ रात्रि एक बजे की है।

निर्भय दयानन्द यतिवर ने जमालपुर स्टेशन पर भारतीय स्वाभिमान

क्रमशः...

७. दोष बच्चों के बच्चों का है

बरेली में शनिवार के दिन श्री महाराज जी का टाऊन हाल में व्याख्यान हुआ। कई सज्जनों ने निवेदन किया कि कल रविवार को व्याख्यान एक घण्टा पहले आरम्भ किया जावे। स्वामीजी ने कहा, "मैं ढाई मील की दूर पर ठहरा हूँ। मेरा समय विभाग व कार्यक्रम पूर्वनिश्चित हैं। अतः सवारी की व्यवस्था कर दी जाये तो मैं एक घण्टा पहले आ जाऊँगा। लक्ष्मीनारायण ख़जानची ने वचन दिया कि वाहन पहले पहुँच जावेगा परन्तु ऋषिवर नियत समय से पौन घण्टा विलम्ब से पहुँचे। श्रोताओं को बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी।

स्वामी जी बग्घी से उतरते ही टाऊन हाल पहुँचे तथा सोटा दीवार के साथ टिकाकर बोले, "मैं नियत समय पर तैयार था परन्तु सवारी न आई। प्रतीक्षा के उपरान्त पैदल ही चल पड़ा। मार्ग में आ रहा था तो बग्घी मुझे मिली अतः देर हो गई। सभ्य जनो! मेरा दोष नहीं है प्रत्युत दोष बच्चों के बच्चों का है जो प्रतिज्ञा पालन करना नहीं जानते। ख़ज़ानची जी ने सवारी पहले पहुँचाने का आश्वासन दिया था।"

श्री लक्ष्मीनारायण जी रोहेलखण्ड के प्रसिद्ध धनवानों में से थे। आप ही ने ऋषि जी का आतिथ्य किया था। सिर झुकाये हुए उन्होंने महाराज की निर्भीक सत्यवाणी को सुना।[१]

८. मैं तो सत्य ही कहूँगा

एक दिन स्वामी जी बरेली में पुराणों की असम्भव बातों का

क्रमशः...

का ध्वज फहरा दिया। इस घटना के लगभग ४० वर्ष पश्चात् गोरों ने गांधी जी को गाड़ी के प्रथम श्रेणी के डिब्बा से उतार फेंकवा दिया गांधी जी तो रात भर प्लेटफार्म पर बैठे रहे। पाठक दोनों घटनाओं की तुलना आप ही कर लें। 'जिज्ञासु'

१. यह घटना बरेली नगर की है। स्वामी जी महाराज १४ अगस्त से तीन अगस्त १८७९ तक बरेली पधारे थे। बाबू मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने यहीं ऋषि-दर्शन किये। शंका समाधान किया। महाराज ने मुंशीराम के हृदय में यहीं पर आस्तिकता का बीज बोया था। 'जिज्ञासु'

खण्डन कर रहे थे। पादरी स्काट के आतिरिक्त कोलैक्टर कमिश्नर तथा पन्द्रह–बीस अंग्रेज़ भी वहाँ उपस्थित थे। स्वामी जी ने जब पौराणिकों की पञ्च कुमारियों का उल्लेख किया तो पादरी महोदय, कमिश्नर, कोलैक्टर आदि सब योरुपियन जी खोलकर हँसते रहे। थोड़ी ही देर में श्री महाराज ने कहा, "यह तो है पौराणिकों की लीला, अब आप किरानियों की लीला भी सुन लो। ये ऐसे भ्रष्ट हैं कि कुमारी के पुत्र होना बताते हैं और फिर दोष सर्वज्ञ, शुद्ध स्वरूप परमात्मा पर लगाते हैं। तनिक भी लज्जित नहीं होते।" यह सुनते ही कोलैक्टर तथा कमिश्नर का चेहरा कोपावेश से तमतमाने लगा। स्वामीजी महाराज उसी जोश से, उसी वेग में अपना व्याख्यान देते हुए अन्त तक ईसाई मत का खण्डन करते रहे।

अगले दिन गोरे ईसाई कमिश्नर ने खज़ानची जी को अपनी कोठी पर बुलवा लिया। उन्हें कहा गया, "आप अपने पण्डित जी से कह दो कि अधिक कठोरता से कार्य न लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य व सुशिक्षित हैं परन्तु यदि असभ्य व अज्ञानी हिन्दू–मुसलमान भड़क गये तो उनके व्याख्यान बन्द हो जायेंगे।"

ला० लक्ष्मीनारायण ने स्वामीजी को सन्देश पहुँचाने का आश्वासन दिया। परन्तु न तो ख़ज़ानची जी तथा न ही किसी अन्य को महाराज तक यह सन्देश पहुँचाने का साहस हुआ। अन्ततः एक नास्तिक को यह कार्य सौंपा गया कि वह स्वामी जी को यह सन्देश पहुँचा देगा। उस नास्तिक सहित ख़ज़ानची जी श्री सेवा में उपस्थित हुए। वह व्यक्ति बड़ी कठिनता से यही शब्द कह पाया, "ख़ज़ानची जी कुछ निवेदन करना चाहते हैं, इन्हें कमिश्नर ने बुलवाया था।"

अब क्या था कि सारी विपत्ति लाला जी के सिर पर ही टूट पड़ी। कभी तो सिर खुजलाते तो कभी खरखर करते व खाँसते रहे। तब स्वामी जी ने कहा, "भाई! तुम्हारा तो कोई कार्य करने का समय ही नहीं। तुम समय का महत्त्व नहीं जानते। मेरा समय तो अनमोल है। जो कहना हो शीघ्र कहिये।"

ख़ज़ानची जी बोले, "महाराज! यदि कठोरता से काम न

लिया जावे तो क्या हानि है? इससे प्रभाव भी अच्छा पड़ता है तथा अंग्रेज़ों को रुष्ट करना भी अच्छा नहीं है।" इत्यादि इत्यादि।

ये शब्द अटक-अटक कर खज़ानची जी के मुख से बड़ी कठिनता से निकले। स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा, "अरे, बात क्या थी जिसके लिए गिड़गिड़ाता है तथा हमारा समय नष्ट करता है। क्या साहब ने कहा होगा कि तुम्हारा पण्डित कठोर बोलता है। व्याख्यान बन्द हो जायेंगे। अरे भाई, मैं हौआ तो नहीं जो तुम्हें खा जाऊँगा। उसने तुम्हें कहा तू मुझे सीधा कह देता।

व्याख्यान का समय हुआ आपने सत्य के बल पर बोलना आरम्भ किया। पादरी स्काट के अतिरिक्त पहले दिन के सब अंग्रेज़ उपस्थित थे। चुपचाप दत्तचित्त होकर सब व्याख्यान सुनते रहे। ऋषि गर्जन करते हुए बोले, "लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कोलैक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा गवर्नर चिढ़ जावेगा। अरे! चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो हम तो सत्य ही कहेंगे।"[१]

इसके पश्चात् उस वाक्य को पढ़ा जिसमें लिखा है कि आत्मा को न हत्यारा छेद सकता है, न अग्नि जला सकती है। सिंहगर्जना करते हुए ऋषिवर बोले, "यह शरीर तो अनित्य है। इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इस जिस

---

१. महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के अन्त में मनुष्य की परिभाषा करते हुए लिखा है, "चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति, अप्रियाचरण सदा किया करे। डाँट दें चाहे उसको कितना ही दारुण दु:ख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही चले जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।" अपने इस कथन को महर्षि ने अपने आचरण से प्रमाणित किया। उपरोक्त कथन इसकी पुष्टि करता है। उन्नीसवीं शताब्दी के किसी भी भारतीय नेता, साधु, सुधारक के जीवन में ऐसी एक भी घटना नहीं मिलेगी। यह ऋषि दयानन्द की विलक्षणता है। 'जिज्ञासु'

मनुष्य का जी चाहे नाश करे दें।"[१]

९. मुझे वह शूरवीर दिखाओ

बरेली में ऊपर की घटना के समय सभा स्थल पर अपनी तीक्ष्ण आँखों की ज्योति बिखेरते हुए गर्जती आवाज़ में आपने कहा, "परन्तु वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाओ जो मेरे आत्मा के नाश करने की बात करता है। जब तक ऐसा वीर संसार में दिखाई नहीं देता मैं यह सोचने के लिए भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊँगा अथवा नहीं।

१०. बिना पक्षपात खरी खरी सुनाई

बरेली में स्वामी जी को पता चल गया कि उनके आतिथेय (Host) ख़ज़ानची लक्ष्मीनारायण ने एक वेश्या को अपने घर में डाल रखा है। उसी दिन जब ख़ज़ानची आये तो आपने पूछा, "ख़ज़ानची जी! तुम कौन हो?"

उत्तर मिला, "महाराज! आप गुण, कर्म व स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था मानते हैं। मैं क्या उत्तर दूँ?"

ऋषि जी ने कहा, "इस युग में हैं तो सब वर्ण सङ्कर परन्तु तुम इस युग में स्वयं को क्या कहते हो?"

बोला "क्षत्रिय हूँ।"

स्वामीजी ने कहा, "यदि क्षत्रिय का पुत्र वेश्या की कोख से जन्म ले तो उसे क्या कहोगे?"

अब ख़ज़ानची जी ने लज्जावश सिर नीचे कर दिया। तब महाराज ने कहा, "सुनो भाई! हम किसी का भी पक्षपात नहीं करते। सच्च सच्च ही कहेंगे।"

उसी रात को ख़ज़ानची जी ने उस स्त्री को कहीं भेज दिया।

इस प्रकार फ़र्रुखाबाद के सेठ जगन्नाथ का दोष भी आपने

---

१. द्रष्टव्य श्रीमद्भगवद्गीता २/२३१ श्री महाराज ने तब "नैनं छिन्दन्तिशस्त्राणि" यही श्लोक बोलकर सिंहगर्जना की थी। यह श्लोक महर्षि को बहुत प्यारा था। गीता के इस लोक को ऋषि ने जीवन में उतार कर दिखाया। 'जिज्ञासु'

उपदेश देकर और खरी-खरी सुनाकर दूर कर दिया।[१]

अंग्रेज़ी राज में धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता

दानापुर के मुसलमान विरोध करने पर बहुत तुले बैठे थे अतः एक महाशय ने सुझाया कि मुसलमानों के विषय में कुछ न कहा जावे। उस समय तो स्वामी जी ने कुछ भी उत्तर ने दिया परन्तु अगले व्याख्यान में इस्लाम मत की समीक्षा कर दी। ऋषि जी ने कहा, "कुछ छोकरों के छोकरे[२] हमको इस्लाम की समालेचाना से रोकते थे परन्तु मैं सत्य को क्यों छुपाऊँ? जब उनकी चलती थी वे तलवार से खण्डन करते रहे। अब क्या अंधेर है कि मुझे वाणी से विचारों से खण्डन करने में रुकावट डाली जाती है। मैं ऐसे विचार स्वातन्त्र्य वाले अच्छे राज में झूठ का पोल खोलने से कैसे रुक सकता हूँ? यही तो इस राज की विशेषता है।"

कहीं पर व्याख्यान का नोटिस एक दिन पहले दिया गया कि कल इञ्जील का खण्डन होगा। व्याख्यान सुनने के लिए कई विदेशी गोरे व देशी पादरी आये। यहाँ तक कि जनरल राबर्ट साहब (प्रधान सेनापति) भी पधारे। मेरी वाणी में जितनी भी शक्ति थी मैंने बाईबिल का खण्डन किया। इसका परस्पर विरोध दिखलाया। व्याख्यान की समाप्ति पर जनरल महोदय बड़ी प्रसन्नता से मिले। हमसे आकर हाथ मिलाया और कहा, "निःसन्देह आप निडर व्यक्ति हैं। हमारे सामने जब हमारे मत

---

१. दुराचार व्यभिचार के लिए ऋषिवर को खरी-खरी सुनाने का भारी मूल्य चुकाना पड़ा। महर्षि के जोधपुर में विषपान अमर बलिदान का एक मुख्य कारण वेश्यागमन के लिए राजा को लगाई गई फटकार ही था। 'जिज्ञासु'

२. यह प्रयोग इस पुस्तक में कई बार आया है। सुनने में तो यह बहुत कठोर लगता है परन्तु इन तीन शब्दों 'छोकरों के छोकरे' में ऋषिवर की अन्तःवेदना ओतप्रोत है। बाल विवाह के कारण आजन्म ब्रह्मचारी हिन्दुओं के लिये इन तीन शब्दों का प्रयोग किया करते थे। इसे पाठक सर्जन द्वारा रोगी के रुग्ण शरीर की सर्जरी समझें। 'जिज्ञासु'

का आपने इतना खण्डन किया तो औरों से क्या डरते होंगे?"

११. आपको जैनी लोग बन्दी बनवा देंगे

लाला भोलानाथ स्वामी जी को सहारनपुर स्टेशन पर मिले और कहने लगे, "महाराज! जैनी लोगों ने आपको पकड़वाने के लिए एक विज्ञापन दिया है तथा भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार आपको बन्दी बनवाने की योजना बनी है।"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "स्वर्ण को जितनी अधिक आँच दोगे उसमें उतनी ही अधिक चमक-दमक आयेगी। वह कुन्दन ही बनेगा मुझे यदि तोप के मुँह से बाँध कर भी कोई प्रश्न करेगा कि सत्य क्या है तो वेद की श्रुति ही मुँह से निकलेगी तथा अब तो मैंने बहुत जैन ग्रन्थ देख लिये हैं। वे मेरे प्रश्नों का क्या उत्तर देंगे?"

१२. अवश्य वहाँ जाकर उपदेश करूँगा

श्री स्वामी जी महाराज जब जोधपुर जाने लगे तो आर्य लोगों ने वहाँ जाने का निषेध किया और कहा कि वहाँ के लोग कठोर प्रकृति के, राक्षस वृत्ति के हैं। आप वहाँ मत जायें। स्वामी जी ने कहा, **"यदि लोग हमारी अंगुलियों को बत्तियाँ बनाकर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश दूँगा।** और यदि यह शरीर न भी रहा तो भी चिन्ता नहीं।[१] सत्यार्थ-प्रकाश ठीक हो ही गया और जो कुछ करने को था सो कर चुके हैं। कोई बात नहीं रही।" एक अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति ने जोधपुर जाते समय कहा, "महाराज! वहाँ तनिक नर्मी से उपदेश करना वह क्रूर देश है।"

मैं पाप के बड़े-बड़े कंटीले वृक्षों को नुहारने से नहीं काटता

जब महर्षि जोधपुर के लिए प्रस्थान करने लगे तो एक

---

१. ऋषिवर ने १८७९ अप्रैल को पण्डितों को लिखे गये पत्र में यह भावपूर्ण वाक्य लिखा था, "शरीरपात की तो मुझे चिन्ता नहीं, परन्तु जो उपकार कार्य मैं कर रहा हूँ वह अधूरा रह जायेगा।" द्रष्टव्य पत्र और विज्ञापन

प्रतिष्ठित व्यक्ति ने उन्हें कहा, "महाराज वहाँ थोड़ा नर्मी से काम लेना वह क्रूर प्रदेश है।"

उत्तर में ऋषिवर बोले, "मैं बड़े-बड़े कंटीले वृक्षों को नुहारने से नहीं काटा करता। इनके काटने के लिये कुल्हाड़ी से काम लूँगा। मुझे किसी का भय नहीं है।"[१]

१३. अभियोग की धमकी देकर सत्य को दबाते हो

स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में जैनमत का खण्डन किया तो ये लोग लगे कमेटियाँ करने। अन्ततः गुजराँवाला (पश्चिमी पंजाब) निवासी एक अनपढ़ जैनी ठाकुरदास[२] आगे हुआ और वह पूज्य आत्माराम से मिलकर लगा पत्र लिखने इनमें स्वामी जी पर पहले तो दबाव डाला गया कि आपने हमारे बारे ठीक नहीं लिखा। जो लिखा है उसके लिए प्रमाण दीजिये।

स्वामी जी ने सब बातों के उत्तर दे दिये तथा डंके की चोट से कहा कि मैंने जो कुछ लिखा है सत्य ही लिखा है। जैसे चाहो- शास्त्रार्थ कर लो। इस पर हठ तथा दुराग्रह का व्यवहार हुआ तथा अभियोग का भय दिखाया गया। परन्तु स्वामी जी ने निर्भय होकर कहा, "जो जी में आये सो कर लो। न्यायालय में जाओ तो वहीं देख लेना क्या गत बनती है। किस प्रकार असत्य का खण्डन होता है।" जैनी लोगों ने कई ढंग अपनाय। कभी नोटिस दिये तो कभी यह प्रचार किया गया कि इतना चन्दा (धन संग्रह) टक्कर लेने के लिये हो गया है।

---

१. यह घटना मई १८८३ की है। जोधपुर जाते हुए चेतावनी शाहपुराधीश नाहरसिंह जी ने दी थी। 'जिज्ञासु'

२. सन्त प्रवर पं॰ लक्ष्मण जी आर्योपदेशक भी जिला गुजराँवाला के ही थे। वे ठाकुरदास के बारे में पूरी-पूरी जानकारी रखते थे। ऋषि दयानन्द की निन्दा में 'दयानन्द छल कपट दर्पण' पुस्तक लिखने वाला जियालाल जैनी भी ठाकुरदास को योग्य व विद्वान् पुरुष नहीं मानता। द्रष्टव्य हमारी पुस्तक निष्कलङ्क दयानन्द। 'जिज्ञासु'

१४. इस वीरता पर राजा भी चकित रह गया

स्वामी जी तो विद्या व सत्य के कारण निर्भय थे ही आर्य पुरुषों पर भी उनका बहुत गहरा प्रभाव पड़ता था तथा आर्य पुरुष भी पक्षपात के विचार से ऊपर उठकर सत्य भाषण करने में साहस से कार्य लेते थे।

जयपुर की घटना है। वहाँ आर्यसमाज का प्रथम वार्षिकोत्सव हुआ तो प्रतिष्ठित सज्जनों को उसमें सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया गया। हवन–उपदेश आदि से सब प्रभावित हुए परन्तु पौराणिक ब्राह्मणों को बड़ा दु:ख हुआ। सब मिलकर महाराजा के गुरु के पास गये जो मथुरा से आये थे। २९० आर्यों के नाम क्रमवार लिखकर महाराजा को पत्र लिखा ये दयानन्द के सब शिष्य प्रतिमा पूजन का खण्डन करते हैं अत: इन सबका भद्र करवाकर राज्य से निष्कासित कर दो और सर्वत्र विज्ञापन निकाल दो कि ये लोगों को नास्तिक बनाते हैं।

महाराजा ने ठाकुर गोविन्द सिंह तथा रघुनाथ सिंह को बुलवाकर पूछा कि यह क्या बात है? रघुनाथ सिंह ने एक सच्चे क्षत्रिय सदृश कहा, "भले ही इनका भद्र करवाकर इन्हें निष्कासित कर दीजिये परन्तु मेरा नाम इस पत्र में अवश्य सबसे ऊपर होना चाहिये क्योंकि मैं इस नगर में स्वामी दयानन्द का प्रथम शिष्य हूँ। कोई बात नहीं, कोई चिन्ता नहीं अब तक आपकी आज्ञा व कृपा से राज किया है। अब आपकी कृपा से इस स्वरूप को धारण करेंगे।"

महाराजा– "क्या तुम भी स्वामी दयानन्द के शिष्य हो?"

ठाकुर जी ने पुन: कहा, "मैं इस नगर में उनका प्रथम शिष्य हूँ। प्रतिमा पूजन को मैं भी नहीं मानता क्योंकि यह वेदोक्त नहीं है। अब जो महाराज की आज्ञा हो उसका पालन किया जाये।"

इस दृढ़ता पर महाराज भी चकित रह गये और कहा कि यह विषय राज से सम्बंधित नहीं है। गुरुजी को किसी ने बहकाया है। स्वामी जी के कार्य से राज्य की हानि नहीं। मैंने उनको सुना है।

तब ठाकुर रघुनाथ सिंह जी न्यायालय में गये तथा ठाकुर गोविन्द सिंह जी को कहा कि जब तक ईसाई व मुसलमान राज्य से बाहर न जावें, हमारी सभा को कोई हानि नहीं पहुँचनी चाहिये।

उन्होंने कहा, निःसंदेह विभिन्न लोग मूर्ति पूजा का खण्डन करते हैं।[१]

१५. पंजाब के लाट साहब से भेंट[२]

लाहौर में लाट साहब स्वामी जी के डेरा पर पहुंचे तथा वार्तालाप करते हुए आपने पाँच प्रश्न पूछे।

पहला:— कौन सा मत सम्प्रदाय अच्छा है?

स्वामी जी:— कोई भी अच्छा नहीं।

लाट साहब:— आप यह कैसे कह सकते हैं? आप तो मज़हब के प्रचारक हैं।

स्वामीजी:— मैं किसी मज़हब का प्रचारक नहीं धर्म का प्रचारक हूँ जो वेद है।

दूसरा प्रश्न:— हम आगे बढ़ें अथंवा नहीं?

स्वामीजी ने संस्कृत का एक श्लोक सुना दिया जिसका अर्थ यह था कि द्विज सन्तोष करे तो उसका नाश होता है तथा ब्राह्मण सन्तोषी न हो तो गिर जाता है।

तीसरा प्रश्न:— भारत में हमारी चिरस्थायी उन्नति कैसे हो?

स्वामीजी:— वेद, ब्राह्मण व गऊ की रक्षा से।

चौथा प्रश्न:— युद्ध-विद्या वेद में है अथवा नहीं?

स्वामीजी:— वेद में सब विद्यायें हैं। युद्ध के लिए धनुर्वेद है। इसके लिए मनु से व्यूह बाँधने का श्लोक सुनाया जिससे अपने

१. ठाकुर रघुनाथ जी से सम्बंधित जयपुर की यह घटना मैंने किसी और ग्रन्थ में भी पढ़ी है परन्तु अब मुझे उसकी याद नहीं श्री पं० लक्ष्मण आर्योपदेशक के बृहत ग्रन्थ में यह नहीं मिली 'जिज्ञासु'

२. लाट साहब का नाम Sir Charles Egerton था। आश्चर्य है कि इस महत्त्वपूर्ण भेंट का वार्ता का उल्लेख अधिकांश जीवनी लेखकों ने नहीं किया। 'जिज्ञासु'

व्यक्ति बच जावें और शत्रु के मर जायें।

पाँचवाँ प्रश्नः– हमारा ईसाई मत उन्नति पर है। आप इसको क्यों नहीं मानते?

स्वामीजी:– आपकी उन्नति का कारण ईसाई मत नहीं है। ब्रह्मचर्य का इञ्जील में उल्लेख नहीं परन्तु यूरोपियन लोग बड़ी आयु में विवाह करते हैं। स्त्रियों के अधिकार इनमें सुरक्षित हैं। इस कारण वहाँ उन्नति है। ये बातें वास्तव में वेद की हैं। जो वेदमार्ग पर चलेगा वही उन्नति करेगा।

इसके पश्चात् लाट साहब की कोठी पर भेंट का निश्चय हुआ परन्तु स्वामी जी ने यह शर्त लगाई कि मैं बैठकर प्रतीक्षा नहीं करूँगा। तीसरे दिन नियत समय पर गये और सूचना दी तो कर्मचारी ने कहा, "ड्रैसिंग रूम में हैं।"

यह सुनते ही आपने गाड़ी लौटाई परन्तु लाट साहब ने आवाज़ सुन ली। वह एकदम दौड़े आये। एक भुजा कोट में डाले हुये थे। आकर आपने गाड़ी रोक ली तथा क्षमा माँगी। तब वेद भाष्य पर बातचीत हुई।

स्वामी जी ने कहा कि जिन लोगों को सम्मति देने का कार्य सौंपा गया है, पण्डित गुरुप्रसाद व स्टेन महोदय[१] आदि वे वेद के आशय को नहीं समझ सकते। स्टेन महोदय स्वयं तो उच्चारण कर नहीं सकते।

परन्तु लाट साहब ने कहा, "हम क्या कर सकते हैं? निर्णय तो मतों (Votes) पर ही कर सकते हैं। आप अपने पक्ष में मत करवा सकें तो हमें कोई आपत्ति नहीं।"

उस समय तक स्वामी जी के पक्ष में मत पड़ना सम्भव ही नहीं था परन्तु सत्य तो फिर सत्य ही है। पं० गुरुप्रसाद पीछे सेन महोदय को कहते थे कि खेद है कि तब मैंने अज्ञानवश (मूर्खता से) विरोध किया।

---

१. इस नाम का उल्लेख हमें किसी और पुस्तक में नहीं मिला। अल्प योग्यता के ये लोग वेद भाष्य पर सम्मति देने के योग्य ही नहीं थे। 'जिज्ञासु'

सातवाँ सर्ग

कुछ लघु कथायें–कुछ प्रश्नोत्तर

इस सर्ग में बहुत सी संक्षिप्त घटनायें व बातें दी जाती हैं। जो एक ओर तो रोचकता पैदा करने का कारण होंगी और दूसरे श्री स्वामी जी के सम्बन्ध में प्रचुर जानकारी बढ़ाने का कारण होंगी। इससे सैद्धान्तिक ज्ञान व पर्याप्त बौद्धिक सामग्री प्राप्त होगी।

१. स्वामी जी ब्राह्मणों को प्रेमपूर्वक कहा करते थे कि विद्या ही में परिश्रम किया करो। खीर पूड़ी के जाने का शोक न करो। विद्या होगी तो खीर पूड़ी अधिक मिलेगी।

२. पुष्कर में स्वामी जी ने पं० नैनूराम जी श्रीमन्त को कहा– "कण्ठी वण्ठी क्यों बाँधे हो?" वह बोला कि जब ब्राह्मणों के बिना कोई संन्यासी न होगा तो हम कण्ठी बाँधना छोड़ देंगे। स्वामी जी बोले, "हम क्या करें यह तो आकाश ही फट गया। हमसे कोई पूछे तो स्पष्ट कहें कि ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी को भी संन्यास लेने का अधिकार नहीं।"

३. कण्ठी तोड़ने वाले पर एक ब्राह्मण क्रुद्धित हुआ। निर्णय के लिए व्यङ्कट जी शास्त्री बुलवाय गए। वह बोले, "स्वामी जी जो कुछ कहते हैं सब सच्च है परन्तु यह बात आपकी उस समय चलेगी जब आपके पक्ष में कोई राजा महाराजा होगा।

४. शिवदयाल ब्राह्मण जब पुष्कर के ब्रह्मा मन्दिर में पूजा करते तो स्वामी जी कहते, "अरे शिवदयाल! तेरा मुँह ब्रह्मा से बोलता है अथवा तुम्हारे साथ बातें करता है?" जब वह नगाड़ा बजाता तो कहते, "अरे, चमड़े को कूटने से क्या लाभ?"

५. पं० गंगाराम को स्वामी जी ने कण्ठी आदि के विरुद्ध उपदेश दिया तो वह बोला, "सत्य तो यह है कि यदि आप एक लाख रुपये लाये होते तो सब ब्राह्मण संतुष्ट हो जाते और कहते, जय महाराज दयानन्द महाराज की जय।"

६. अजमेर में पादरी शास्त्रार्थ में सर्वथा निरुत्तर हो गये। इसके पश्चात् राबन्सन साहब ने ब्रह्मा के व्यभिचार के विषय में प्रश्न किया। स्वामी जी ने कहा, "क्या एक नाम के अनेक व्यक्ति नहीं होते? कौन कह सकता है कि यह ब्रह्मा वही है। महर्षि ब्रह्मा ऐसे नहीं थे। कोई और होगा।" साहब बहुत प्रसन्न हुए और आपको पत्र दिया कि जो भी अंग्रेज़ आपसे मिलेगा बहुत लाभान्वित होगा।

७. स्वामी जी अजमेर में डिप्टी कमिश्नर महोदय से मिले तो वार्तालाप करते हुए कहा, "राजा प्रजा का पिता होता है। पुत्र को खोटे कामों से रोकना पिता का कर्त्तव्य है। देश में अंधकार फैल रहा है। आप राजा है। मत मतान्तरों वाले प्रजा को लूट रहे हैं। इसकी व्यवस्था करें।" उत्तर मिला कि सरकार धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। हाँ कोई विशेष कार्य हो तो हम सहयोग करने से पीछे नहीं हटेंगे।

८. नाग पर्वत के वन से दो नवयुवक तपस्वी स्वामी जी से अजमेर में भेंट करने आये। वे संस्कृत में ही बोलते थे। एक बार उन्होंने गर्व से कहा, हम बड़े शांत हैं।

स्वामी जी:— आपने अभी अहंकार नहीं जीता।

तपस्वी:— "हाँ जीत लिया है।"

इस पर स्वामी जी ने एक ब्रह्मचारी को संकेत करके कुछ समझाया। वे बाहर निकले तो ब्रह्मचारी ने किसी बात पर उनसे विवाद करके उन्हें पकड़ लिया। मल्ल युद्ध हुआ। एक-दूसरे को पछाड़ते रहे। स्वामी जी ने उन्हें अलग-अलग करके और भीतर जाकर समझाया कि क्या अपने अभिमान जीत लिया। यह सुनते ही उन्होंने क्षमा माँग ली।

९. हरिद्वार में काशी के प्रसिद्ध विद्वान् विशुद्धानन्द जी ने 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद' मन्त्र के यह अर्थ किये कि ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से उत्पन्न हुये हैं। स्वामी जी ने कहा, "मुख से तो खखार भी निकलता है।" इसके पश्चात् इसके यथार्थ अर्थ बताये।

१०. स्वामी जी ने हरिद्वार में कुम्भ मेले पर जब सर्वस्व त्याग कर दिया तब यह भी प्रण किया था कि जब तक मंशा पूरा न हो हम संस्कृत ही बोलेंगे तथा गंगा तट पर विचरण करेंगे। इसकी सब साधुओं में चर्चा हो गई। सब कहते थे कि मूर्तिपूजा व पुराणों का झूठा होना अथवा सम्प्रदायों का खण्डन जो दयानन्द करता है यह है तो सब सत्य परन्तु खुल खेलना अर्थात् संसार के प्रवाह के विरुद्ध चलना अच्छा नहीं।

११. फ़र्रुखाबाद में पं० मणिलाल ने पूछा, "महाराज! गंगा कैसी है?"
अविलम्ब उत्तर दिया, "जड़ पदार्थ है।"
फिर पूछा, "सूर्यनारायण कैसा है?"
बोले, "जड़ पदार्थ है।"

१२. कर्णवास में एक बार पं० भगवानदास ने ठाकुरों को भोग लगाकर स्वामी जी को भोजन खिलाना चाहा। स्वामी जी ने कहा, "हम उच्छिष्ट पदार्थ नहीं खाते।" इस पर बिना भोग लगाये ही उसने स्वामी जी को भोजन करवाया।

१३. अनूप शहर में सूरज पुरी बार-बार आकर स्वामी जी से प्रश्न करते तथा उत्तर पाते रहे। अन्ततः उसने एक बात पूछी तो बोले कि तुम्हारी मोटी बुद्धि है सूक्ष्म बातों को नहीं समझ सकती। जिस प्रकार रेत में बिखरी चीनी को हाथी नहीं निकाल सकता परन्तु चींटी के लिए यह कार्य बहुत सरल है।

१४. स्वामी जी जब टालबांस से अनपूशहर जाने लगे तो एक

व्यक्ति ने कहा, "नगर में भागवत की कथा हो रही है और आप उसका खण्डन करते हैं। कोई भोजन भी न पूछेगा।" स्वामी जी ने उत्तर में कहा, "इसकी परवहा नहीं। हमारा प्रारब्ध हमारे साथ है।"

१५. रामघाट में करुणाशंकर ने मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया। जब संतुष्टि हो गई तो कहने लगा कि प्रतिमा–पूजन का खण्डन है तो ठीक परन्तु आजीविका के कारण छोड़ नहीं सकते।

यहाँ ही नारायण प्रसाद अध्यापक प्रश्न करके उत्तर पाता रहा। वह कहता था कि आज पर्यन्त मेरी जो शंकायें किसी से निवारण न हो सकीं, उन सबका निवारण श्री स्वामी जी महाराज ने कर दिया है।

१६. रामघाट के भैरोंनाथ स्वामी जी महाराज की बहुत प्रशंसा किया करते थे। उनकी विद्वत्ता में कोई कमी नहीं। विशुद्धानन्द स्वामी भी निस्संदेह विद्वान् हैं परन्तु स्वामी जी की बात ही और है। वे वेदविद्या में अद्वितीय विद्वान् हैं।

१७. पाठक छन्नू शंकर ने कहा कि तुलसी पूजन से आप रोकते हैं फिर भोजन उपरान्त उसका सेवन क्यों करते हैं?

स्वामी जी ने कहा, महात्म्य मानकर सेवन नहीं करता परन्तु मुख को साफ़ करने के लिए पान के सदृश खाता हूँ।

१८. कई स्थानों पर पूछा जाता था कि आप शरीर पर मिट्टी क्यों लगाते हैं। स्वामी जी ने कहा, "इससे मछर जो डंक मारता है उसका प्रभाव नहीं होता।"

१९. एक व्यक्ति ने स्वामी जी को कहा कि मेरा हाथ देखिये। स्वामी जी ने कहा, "दिखाओ।"

उसने हाथ आगे किया और पूछा, "इसमें क्या है?"

स्वामी जी ने कहा, "इसमें हाड–मांस है और रक्त है और कुछ नहीं।"

एक व्यक्ति ने जन्म–पत्र दिखलाया तो स्वामी जी ने कहा,

"जन्म पत्र का क्या प्रयोजन? कर्म-पत्र श्रेष्ठ होता है।"

२०. साधु मायाराम ने स्वामी जी महाराज की बहुत निन्दा सुनकर उन्हें कहा, "मूर्तिपूजा खण्डन से आपको क्या मिलता है? आनन्द से भोजन पाकर हमारे समान मस्त रहा करो। विश्राम किया करो। क्यों वैर पैदा करते हो?"
श्री स्वामी जी महाराज बोले, "हम तो ब्रह्मानन्द में वर्तते हैं। वेद के प्रचार में जो आनन्द आता है। वह और कहाँ मिल सकता है?"

२१. स्वामी जी एक बार स्वामी कैलाश पर्वत के पास बाग वाली कुटिया में गये। वार्तालाप करते हुए महाराज ने कहा, "कैलाश पर्वत इतनी छोटी कुटिया में कैसे समा गया?" इस पर वहाँ उपस्थित सब जन हँस पड़े।

२२. स्वामी जी जहाँ जाते वार्तालाप, शंका समाधान, व्याख्यान, शास्त्रार्थ के अतिरिक्त सन्ध्या गायत्री का बहुत उपदेश देते थे। लोगों को सन्ध्या सिखाते। एक स्थान पर लगभग दो सौ व्यक्ति सन्ध्या करने लगे। नारायण नाम के एक कवि ने इसका वर्णन अपनी एक कविता में किया है।
स्वामी दयानन्द सरस्वती बाबा आये, ऐसे शास्त्री बहुतेरे लड़के गो पढ़ डालें, पढ़ावें उनको गायत्री।

२३. एक मेले पर कायम गंज के पण्डित उमा दत्त से शास्त्रार्थ हो गया। जब वह निरुत्तर हो गया तो उसने महाभारत का एक श्लोक बोलकर कहा, एकलव्य नाम के भील बालक ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर पूजी थी।" स्वामी जी ने कहा, "वह एक सरल भील था। किसी विद्वान् का प्रमाण दो। उसने दुर्योधन का प्रमाण दिया।" ऋषि जी ने कहा, "दुर्योधन का वाक्य अप्रमाणिक है।"

२४. ककोड़ा में एक वैरागी स्वामी जी से मिला जो ब्राह्मणों के बेटों को उच्छिष्ट खिलाता था। उनसे सेवा करवाता था। वह विद्यार्थियों से यह जप करवाता था कि हरि भजो सब छोड़ो धंधा। स्वामी जी ने आपत्ति की, क्यों सब सत्कर्म छुड़वाते

हो। वह निरुत्तर हो गया।

२५. स्वामी जी महाराज ने कायम गंज आते ही प्रश्न किया कि यह क्या है? उत्तर मिला, "शिवालय।"
ऋषि बोले, "तुम लोग तो कहते हो शिवालय कैलाश पर्वत पर हैं। शिवजी वहीं रहते हैं अतः यह तो सराय है।"

२६. एक व्यक्ति ने कहा, "सत्य नारायण की कथा के लिये रुपये की मन्नत मानते हैं। कार्य सिद्ध हो जाता है। स्वामी जी बोले, "हम सत्यनारायण की कथा के निमित्त कुछ रुपये दिखाकर यह चाहते हैं कि लखपति हो जावें क्या हो जावेंगे?" इस पर वह मौन हो गया।

२७. फ़र्रुख़ाबाद में एक साधु कढ़ी तथा भात लाया और स्वामी जी ने उसे खा लिया। ब्राह्मण कहने लगे कि तुम भ्रष्ट हो गये। साधु की रोटी खाई। स्वामी जी बोले, "रोटी भ्रष्ट होती है दो प्रकार से। एक तो दुःख देकर प्राप्त किये गये अन्न से। दूसरे उसमें कोई मलीन पदार्थ के पड़ने से। परिश्रम की कमाई से प्राप्त किये गये अन्न व उत्तम पदार्थ में कोई दोष नहीं है।"

२८. एक पण्डित ने कहा, "आप लोगों को यज्ञोपवीत कैसे धारण करवाते हैं? शुक्र अस्त हो गया है अतः यह ठीक नहीं।" ऋषिवर ने उत्तर में कहा, "हमें शुक्र के अस्त से क्या? हमारा तो अस्त नहीं हुआ।"

२९. फ़र्रुखाबाद में गढ़ी के नवाब जी ने प्रश्न किया कि क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे अन्यत्र की बात का ज्ञान हो जाये।?
स्वामी जी ने कहा, "योगी गुप्त बातों की इच्छा नहीं करते। सबसे गुप्त ब्रह्म सुनता है। उसी का जानना योगी का मुख्योद्देश्य है। यही योग विद्या है।"

३०. एक बार ऋषिवर घाट पर जल में पाँव लटकाये बैठे थे। कुछ लड़कों ने उन्हें देखकर कह, यह मोटा व्यक्ति यहाँ क्या पड़ा है। इसको मारो। यह निश्चय करके वे रेत के

गोले बनाकर उन पर फेंकते रहे। महाराज चुपचाप रेत के गोले खाते रहे परन्तु जब कुछ रेत उनकी आँखों में पड़ी तो वहाँ से उठकर चले गये। फेंकने वालों को कुछ भी न कहा।

३१. **मैं पहले से जानता हूँ–** लोग उनके सामने उनके विरोध की चर्चा करते तो श्री स्वामीजी कहते, "मैंने असत्य का खण्डन करने से पूर्व ही यह विचार लिया था कि विरोध तो अवश्य होगा परन्तु मैंने यह बोझ ईश्वर के आश्रय उठाया है। अंग्रेज़ी राज भी इसमें एक प्रकार से सहयोगी है। यदि अंग्रेज़ी राज न होता तो ब्राह्मण लोग मुझे मरवा डालते।

३२. कन्नौज में विरोधियों ने स्वामी जी को अनेक बार कहला भेजा कि मूर्ति खण्डन न करें अन्यथा हम मार देंगे।

३३. एक बार शंकर जी ने एकान्त में उन्हें यह सन्देश सुनाया तब स्वामी जी बोले, "हमारे मारने से मत डरो। दो व्यक्तियों के लिए तो हम पर्याप्त हैं। अधिक एकत्र होंगे तो सरकार को सूचना देकर पकड़वा देंगे।[१] इसी लिये हम मैदान में पड़े रहते हैं ओट में नहीं रहते कि कोई ऊपर से पत्थर न फेंक दे।"

३४. **और माँगता है भिक्षा–** स्वामी जी महाराज किसी भिखारी के मस्तक पर श्री तिलक देखते तो कहते, "मस्तक पर तो श्री (सम्पदा) है और माँगता है भिक्षा!"

३५. एक बार पण्डित लोग महादेव की मूर्ति पर बिल पत्र चढ़ाकर आये। "स्वामी जी ने पूछा, कहाँ गये थे?"
उत्तर मिला, "बिल पत्र चढ़ाने।"
स्वामी जी ने कहा, "इससे तो ऊँट को खिलाया होता तो उसको चारा मिल जाता। पत्थर को चढ़ाने से क्या लाभ?"

---

१. यही एक घटना है जिसके अनुसार किसी दुष्ट को पकड़वाने की बात कही है। महर्षि ने कभी भी प्राणघातियों के विरुद्ध कोई F.I.R. किसी भी कोतवाली में नहीं लिखवाई। 'जिज्ञासु'

३६. एक ब्राह्मण भैरों पर पुष्प पत्र चढ़ाने आया। स्वामी जी ने कहा, "वहाँ आप तो खाओ खीर व लड्डू और भैरों को दो पुष्प पत्र! इसके पास कैलाश पर तो जाओ। यहाँ तो पाषाण है।"

ब्राह्मण बिगड़ गया कि तुम तो भैरों की निन्दा करते हो। अभी थोड़े दिन हुए भैरों की सवारी निकली थी। सन्तरी ने मैगज़ीन के बुर्ज पर से टोका। भैरों ने कोप करके उलटा सिपाही को नदी में डाल दिया। प्रशासक ने सूचना पाकर आदेश दिया कि इस ओर का पर्दा उठा दो। इसकी आवश्यकता नहीं। यहाँ भैरों स्वयं रक्षक है।

स्वामी जी ने कहा, "भैरों ने क्या गिराया होगा? निद्रा में ऊँघने के कारण गिर गया होगा। और यदि वह सच्चमुच जागती जोत है तो हमें उठाकर फेंक दे। हम तो नित्यप्रति उसका खण्डन करते हैं। वास्तव में यह बात निरर्थक है।

३७. कई स्थानों पर ऐसा होता था कि लोग आपका विरोध करते। शास्त्रार्थ में पण्डित लोग आपकी बातों का खण्डन भी करते रहते परन्तु जब बाद में बैठकर बातें करते तो कहते, "कहता तो संन्यासी ठीक बात है परन्तु इससे सबकी आजीविका मारी जाती है। यदि ये मूर्तिपूजा खण्डन न करते होते तो आजकल इन्हें ब्रह्मा का अवतार कहना बजा होता। यदि यह किसी एक मत का खण्डन करते हैं यह बात बहुत बुरी है।

३८. भस्म रमाने वालों को स्वामी जी कहते थे कि यदि इससे मोक्ष होती है तो गधा दिन रात भस्म में लौटता करता है तो क्या उसको मोक्ष मिल गया?

३९. कानपुर के शास्त्रार्थ के पश्चात् एक व्यक्ति ने पूछा, "महाराज! चार सौ ब्राह्मण एकत्र हुए क्या इनमें से आपने किसी को विद्वान् नहीं पाया।" बोले, "एक लक्ष्मण शास्त्री विद्वान् है परन्तु मुद्रा के लोभ में आया हुआ है।"

४०. स्वामी जी ने कैलाश पर्वत को कानपुर में सन्देश भेजा कि आकर समझ लो। उसने उत्तर दिया कि हम शूद्र के घर पर नहीं आते जाते। श्री महाराज एक कायस्थ भक्त के वहाँ ठहरे थे। कैलाश पर्वत की दृष्टि में कायस्थ शूद्र थे। स्वामी जी ने उसे कहा, "यदि ऐसी बात है तो मलेच्छ के राज में क्यों रहते हो?"

४१. **मोह में नहीं फँसेंगे**–कानपुर में हृदय नारायण स्वामी जी के बड़े श्रद्धालु तथा प्रेमी भक्त थे। उन्होंने पूछा, "आप कब जायेंगे? आपने कहा, "यह हम नहीं बतला सकते। मुंशी गंगा सहाय ने कहा, "महाराज! जब जाने लगें तो मुझे बतला देना।" स्वामी जी ने कहा, "ऐसा नहीं हो सकता अन्यथा हम परिवार वालों से क्या पृथक् होते? हमारा कार्य ऐसा नहीं जैसा लोग कहते हैं कि अमुक तुम ठीक ठाक रहना और हमें मिलते रहना। यह कार्य मोह के हैं, हम नहीं करेंगे।" इस प्रकार जब जाने लगे तो बिना सूचना दिये हुए पुराने लंगोट के साथ भस्म रमाकर चल दिये। नया लंगोट व लोटा सब कुछ वहीं छोड़ गये।

४२. काशी नरेश ने जब सुना कि एक महात्मा आये हैं जो मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं तो उन्होंने स्वामी जी को बुलाया परन्तु आपने कहा, "हम नहीं जावेंगे। यदि राजा की इच्छा है तो यहाँ आयें और संतुष्टि कर लें परन्तु चाटुकार टोली इस भेंट के विरुद्ध थी। उन्होंने कहा, "आप राजा, वह एक मस्त साधु। मेल नहीं होगा" तथापि राजा जी ने एक उत्तम मालीदा बनवाकर स्वामी जी के लिये भिजवाया तथा भोजन आदि के विषय में बहुत ध्यान रखा। फिर राजा महोदय ने निरञ्जनानन्द स्वामी से पूछा, "दयानन्द कहता है, वेद में मूर्तिपूजा तथा रामलीला नहीं।"

तो गुरु मान लेते:– उसने कहा, "वेद में तो सच्चमुच नहीं। लोक रीति है।" महाराज को यह सुनकर आश्चर्य

हुआ। चोबे को आज्ञा दी—नित्यप्रति स्वामी जी के पास जाकर जैसा भोजन वह चाहें करवा दिया करो। राजा यह कहते कि यदि दयानन्द मूर्तिपूजा का विरोधी न होता तो हम उसे गुरु मान लेते और अपने हाथ से उस पर छत्र चढ़ाते।

४३. **नाक काटी जाने की शर्तः—** स्वामी जी की मधुर वाणी तथा उसके प्रभाव की कई घटनायें अत्यन्त रोचक हैं। काशी में एक दाक्षिणात्य पण्डित महामहोपाध्याय राम मिश्र थे। उन्हें बड़ा अभिमान था कि एक बार ही स्वामी जी से मिलूँ तो उनके विचार ठीक कर दूँ परन्तु उसे स्वामी जी का मुख देखना स्वीकार नहीं था। उसने कहा कि वे मूर्ति की निन्दा करते हैं तथा ब्राह्मणों को भला बुरा कहते हैं। अन्ततः रात के समय भेंट करने का मन बनाया। यह निश्चय करके गये और जाते ही कहा, "शास्त्रार्थ करने का साहस है तो मेरी शर्तें स्वीकार करो परन्तु ऐसे पतित पुरुष से देव भाषा में बात नहीं करूँगा।"

स्वामी जी ने कहा, "आप बैठिये तो। पहली शर्त तो मैं समझ गया कि आप मुझे संस्कृत में बोलने की अनुमति न देंगे परन्तु संस्कृत का शब्द तो बोलने देंगे? चलो! और शर्तें कहिये।"

पण्डित महोदय ने उठकर कहा, "एक छुरी मध्य में रखी जावे। जो भी पराजित हो, उस छुरी से उसका नाक काट दिया जावे।"

श्री स्वामी जी महाराज ने हँसकर कहा, "यह स्वीकार परन्तु नाक विचारा तो शास्त्रार्थ करेगा नहीं प्रत्युत वाणी द्वारा शास्त्रार्थ होगा अतः मेरी भी एक बात मानिये, वह यह कि दूसरी छुरी भी रखी जाये जिससे हारने वाली की जिह्वा काटी जावे और यदि तुम्हें स्वीकार होगा तो नाक भी काट ली जावेगी।" सारी बातचीत श्री स्वामी जी ने हँसकर व

विनम्रता से की। दस-पन्द्रह मिनट में ही राम मिश्र जी स्वामी जी के प्रेमी शुभेच्छु बन गये तथा सदा आते जाते रहे।

४४. **कहता तो सच्च है:-** संस्कृत के एक नामी विद्वान् स्वामी राम निरञ्जन जी को किसी ने यह सूचना दी कि दयानन्द नाम के एक महात्मा आये हैं जो मूर्ति पूजन का खण्डन करते हैं। उन्होंने आगे-पीछे देखकर कि कोई और तो नहीं सुनता, यह कहा, "कहता तो सच्च है परन्तु अल्पायु व अनुभवहीन है।"

४५. **आत्म-सिंगार किया करो:-** प्रयाग के कुम्भ प्रचार में स्वामी जी आचार्यों से कहते थे कि मस्तक का शृङ्गार करने की बजाय उपासना द्वारा आत्मा का सिंगार किया करो। आडम्बर रचना महात्माओं का कार्य नहीं है। माया तुमने कैसी रच रखी है। वे उत्तर न दे पाये। ऋषि बोले, "शोक! महाशोक! तिलक आदि बनाने में लोगों की रुचि है। योगाभ्यास में नहीं। मूर्ख जितनी देर तिलक लगाता रहा, इतना काल गायत्री जप क्यों न किया?" एक आचार्य बोला, "यदि आप हमारे क्षेत्र में हों तो धरती में गाड़कर मार दें।"

स्वामी जी मुस्करा दिये तथा बार-बार बिठाकर योगाभ्यास करने का उपदेश देते रहे।

४६. **इन्हें मत रोको टोको:-** स्वामी जी मिर्जापुर में थे तो रात्रि दो बजे ही गंगा तट पर जाकर शौच स्नान से निवृत्त होकर तीन बजे अपने डेरे पर समाधि लगाकर ईश्वर के ध्यान में बैठ जाते। एक रात दो बजे थे किसी बोल्ड साहब की फ़ैक्टरी का एक सिपाही इतने लम्बे चौड़े शरीर में व्यक्ति को देखकर डर गया। उसने साहब को जाकर सूचना दी। वह लैम्प लेकर आये। स्वामी जी महाराज को देखकर सन्तरी को कहा, "यह जिस समय भी आवें, आने दो। कोई

रोक टोक न हो।"

४७. **ऐसे-ऐसे प्रश्न भी होते थेः–** एक व्यक्ति ने प्रश्न किया, जीवात्मा परमात्मा है अथवा नहीं?
ऋषिवर ने कहा, "यह सूक्ष्म विषय है तुम इसे समझ न सकोगे।" इस पर एक पण्डित ने श्लोक पढ़कर कहा, "जल विष्णु, स्थल भी विष्णु इत्यादि।" स्वामी जी बोले, "यह अर्थ है जल थल सब विष्णु है तो आप लोग शौच भी उसी पर जाते हैं और मूत्र भी उसी पर करते हैं। इससे बड़ा दोष लगता है।" यह सुनकर वह चुप हो गया।

४८. **किसी वृक्ष को ही सींच दोः–** अनपूशहर की घटना है। स्वामी जी प्रातःकाल शौच स्नाने के लिए गंगा तट पर थे। बहुत लोग पूर्णमासी का दिन होने से पितरों को जल देने आये। स्वामी जी ने अपना प्रचार आरम्भ कर दिया और कहा, "हे मूढ़ो! जल में जल मत डालो प्रत्युत डालते ही हो तो किसी वृक्ष की जड़ में डालो। कुछ लाभ तो पहुँचे।"

४९. **चौक के बाहर बैठ गयेः–** पटना में एक दिन महाराज दिशा जंगल को बाहर गये। पीछे पाचक ब्राह्मण का चाचा चौके के पास आकर उससे पूछने लगा कि आप लोग तो स्वामी जी के खाने के पश्चात् ही भोजन पाते होंगे? वह बोला, "हाँ।" इस पर उसने कहा, "चौका तो फिर झूठा हो जाता होगा? लकीर आदि का नियम किया करो।" स्वामी जी आकर स्नान ध्यान से निपटकर भोजन करने लगे तो नियम विरुद्ध चौके के बाहर ही बैठ गये।
रसोइया बोला, "महाराज यह क्यों?"
आपने कहा, "हमें यहीं दे दो। हमें यह डर तो नहीं कि कोई जाति बरादारी से निकाल देगा।"

५०. राजनाथ शर्मा तिवारी को स्वामी जी का विद्या बल तथा सत्य का प्रचार देखकर रुचि पैदा हुई कि मैं भी ऐसे महात्मा की संगति में रहूँ और जन्म सफल कर लूँ उसने

प्रार्थना की तो श्री महाराज ने कहा, "घर वालों से विचार कर लें।"

वह बोला, "महाराज! वे कहाँ अनुमति देंगे प्रत्युत कहेंगे कि स्वामी तुम्हें बहकाकर साधु बना देगा।"

बातचीत हो गई। उसकी प्रबल इच्छा व श्रद्धा को देखकर स्वामी जी ने स्वीकार किया और उसे प्रथम दिवस भोजन बनाने पर लगाया। इसके पश्चात् वह स्कूल में नाम कटवाने तथा अपनी वस्तुयें लेने गया। स्कूल में मास्टरों से जब यह चर्चा की कि मैं अब स्वामी जी महाराज से विद्या पढ़ूँगा तो उन्होंने भी उसे बहुत प्रोत्साहन दिया कि तेरा बड़ा सौभाग्य है जो स्वामी जी महाराज ने तुम्हें पढ़ाना स्वीकार किया है।

सायंकाल डिप्टी मोहनलाल ने उससे पूछा कि कब स्वामी जी के पास जाओगे? बोला, "कल प्रातः।" उन्होंने कहा, "अभी जाओ। दूध व मिश्री साथ ले जाओ।" वह कहने लगा, "रात का समय है। बहुत अंधेरा है। दो ढाई कोस की दूरी है। मार्ग में किनारे-किनारे पानी है। अकेले कैसे जाऊँ?"

डिप्टी साहब ने कहा, "ऐसे भीरु हो तो स्वामी के पास कैसे रहोगे?" फिर दूध व मिश्री लेकर चल दिया। मार्ग में बूंदाबांदी आरंभ हो गई। अंधेरा तो बहुत था ही। अतः डरने लगा। कुछ आगे गया तो एक और ही विपदा सम्मुख आई। एक बड़ा सर्प जल से निकलकर सड़क पर आया। यह भयभीत होकर पीछे को भागा। उधर एक और सर्प दिखाई दिया। बहुत घबराया कि न इधर के रहे और न उधर के। देर तक वहीं खड़ा रहा। अन्त में निश्चय करके स्वामी जी की ओर चल दिया। सर्प के निकट जाकर आँखें बन्द करके छलांग लगाकर साँप के ऊपर से कूद गया। बड़ी कठिनाई से जब यह बाग में पहुँचा तो स्वामी जी ने इसे

आते ही पूछा, "मार्ग में डर तो नहीं लगा।"

बोला, "महाराज! बहुत डर लगा।"

स्वामीजी ने पूछा, "क्या सर्प देखा?" कहा, "सत्य है।"

५१. **कुमति कहते थे:**— स्वामी जी के पास कौमुदी की चर्चा होती तो आप इसे कुमति कहते। दुर्गा-पाठ को मुर्ग़ा-पाठ तथा पुजारी का अर्थ किया करते थे पूजा-अरि अर्थात् पूजा का शत्रु।

५२. मुंगेर (बिहार) में एक दिन कहार ने गंगा पर जाकर एक टाल वाले से सूखी लकड़ी माँगी कि स्वामी जी की रसोई करनी है। टाल वाले ने कहा, "हम नहीं जानते कि कौन स्वामी हैं।"

रसोई बनाने वाला कहार लौट आया। स्वामी जी को इस बात का पता लगा तो राजनाथ को कहा, "इसे दण्ड दो। यह लकड़ी के लिए भिक्षा माँगने गया था।" राजनाथ ने उसे कुछ दण्ड दिया। पीटा। तब स्वामी जी ने दोनों को समझाया कि कभी भिक्षा माँगोगे तो दोनों को निकाल देंगे। इसके कुछ समय पश्चात् वही टाल वाला स्वयं ही लकड़ी उठाकर लेता आया। उसने स्वामी जी को प्रणाम किया। स्वामी जी ने कहा, "तुमसे किसने माँगी है? हम लकड़ी नहीं लेते।"

उसने कहा, "हमसे एक अपराध हो गया है। हम इस कहार को नहीं जानते थे। इसके आने के पश्चात् ही हमें पता चला कि आप चार दिन से पधारे हैं।" उसके अनुरोध करने पर स्वामी जी ने लकड़ी लेनी स्वीकार कर ली।

५३. **हमें ऐसी भिक्षा नहीं चाहिये:**— भागलपुर में एक बनिया दो-तीन दिन तक अन्न व दूध आदि भिजवाता रहा। उसकी इच्छा थी कि मेरे घर पुत्र उत्पन्न हो। स्वामी जी उसके कहे बिना ही उसके व्यवहार से यह जान गये और तीसरे दिन उसका अन्न लौटा दिया। आपने कहा, "हमें

सकाम (स्वार्थ वाली) भिक्षा नहीं चाहिये। हम ऐसी भिक्षा नहीं लिया करते।"

५४. **तो हम ईसाई क्यों होतेः–** भागलपुर में एक दिन ३०–४० देसी व अंग्रेज़ पादरियों तथा कुछ मौलवियों से वार्तालाप हुआ। स्वामी जी का उपदेश सुनकर एक बंगाली ब्राह्मण ईसाई बहुत रोने लगा कि खेद है कि आप सरीखे विद्वान् पण्डित हमें पहले नहीं मिले अन्यथा हम ईसाई क्यों होते। हम स्कूल में पढ़ते थे तथा ईसाइयों के आक्षेपों के उत्तर घर आकर पूछते तो हमें सन्तोष जनक उत्तर न मिलता था।

५५. स्वामी जी महाराज जब प्रथम बार केशवचन्द्र सेन से मिले तो एक रोचक घटना घटी। बाबू केशवचन्द्र सेन ने वार्तालाप करते हुए स्वामी जी से पूछा, "क्या आप केशवचन्द्र सेन से मिले?"

स्वामी जी ने कहा, "हाँ! मिला हूँ।"

श्री केशवचन्द्र सेन ने कहा, "वह तो बाहर गये हुए थे। आप कब मिले?"

आपने कहा, "मैं मिल चुका हूँ।" दो–तीन बार ऐसे ही कुछ वाक्य बोलकर महाराज ने कहा, "आप ही तो केशवचन्द्र सेन हैं।"

प्रश्न हुआ, "आपने यह कैसे जाना? "

ऋषिवर ने उत्तर दिया, "यह वार्तालाप किसी और का हो ही नहीं सकता।"

५६. **मुझे भी उतना ही खेद हैः–** एक बार केशवचन्द्र सेन जी ने कहा, "मुझे इस बात पर बड़ा खेद है कि वेदों के विद्वान् अंग्रेज़ी नहीं जानते अन्यथा इंगलैण्ड जाने के लिये मेरे मन पसन्द उपयुक्त साथी होते।" प्राचीन दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् ऋषि दयानन्द के स्वभाव में अहंकार नहीं था इस लिए अंग्रेज़ी में धाराप्रवाह भाषण देने वाले भारतीय सुवक्ता को उत्तर दिया कि मैं भी ब्राह्म समाज के नेता के

संस्कृत न जानने पर वैसे ही खेद व्यक्त करता हूँ जो भारतवासियों को इस भाषा द्वारा एक सभ्य धर्म का ज्ञान देना चाहते हैं जिसको वे समझ ही नहीं सकते।

५७. **आजीविका जाने का भयः–** कानपुर में एक दिन पं० हेमचन्द्र ने पूछा कि इतने बड़े–बड़े पण्डित विचार करने आते हैं। क्या सबकी भूल है? कोई कुछ नहीं जानता? एक आप ही ठीक है? स्वामी जी ने हँसते हुए कहा, "सत्य को जानते तो सब हैं परन्तु आजीविका जाने के भय से खुलकर नहीं कह पाते।"

५८. **दीवार के पीछे सेः–** अलोगढ़ का पं० मेहरचन्द्र लोगों को कहा करता था कि स्वामी दयानन्द अलीगढ़ आवे तो मैं शास्त्रार्थ में दो मिनट में उसे चुप करवा दूँगा। परन्तु जब वे आये तो सामने नहीं आया। स्वामी जी ने बुलवाया तो उसने बहाना बनाया हम प्रतिमा–पूजन का खण्डन करने वाले का मुख तक नहीं देखना चाहते। स्वामी जी ने कहा, "यदि ऐसा है तो बीच में परदा कर दो। ऐसा न हो सके तो किसी दीवार की ओट में दोनों ओर हम बैठ सकते हैं।" परन्तु माने कौन?

५९. **ऊपर नीचे से बड़प्पन नहींः–** अलीगढ़ में स्वामी जी महाराज महादेव के मन्दिर के समीप फ़र्श पर बैठे थे गोल का एक शीघ्र बौद्धी पंडित आया और चबूतरा के ऊपर बैठकर शास्त्रार्थ करने लगा। लोगों ने कहा, "बैठो तो सभ्यता से।" परन्तु वह नहीं माना।
स्वामी जी ने कहा, "कोई बात नहीं। बैठने दो। ऊपर अथवा नीचे कोई बड़प्पन नहीं। देखो कौआ वृक्ष पर बैठा है। वह पण्डित जी से भी ऊँचा है।"

६०. **अविद्या में फंसे लोगः–** दण्डी विरजानन्द जी के शिष्य हरिकिशन वृन्दावन में मिले तो स्वामी जी ने पूछा, "वह गुठली वाला (रुद्राक्षधारी) कृष्णानन्द देखा है। वह बोले,